अध्याय–16

भारत की विदेश नीति

अध्याय का ढ़ांचा

16.1 प्रस्तावना

16.1.1 अध्याय के उद्देश्य

16.2 विदेश नीति क्या है?

16.3 ऐतिहासिक दृष्टभूमि

16.4 उद्देश्य

16.4.1 प्रमुख उद्देश्य

16.4.2 अन्य उद्देश्य

16.5 सिद्धान्त

16.5.1 प्रमुख सिद्धान्त

16.5.2 अन्य सिद्धान्त

16.6 विदेश नीति की विशेषताएँ

16.6.1 गुटनिरपेक्षता की नीति

16.6.2 पंचशील को अपनाना

16.6.3 शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व में आस्था

16.6.4 साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद एवं रंगभेद का विरोध

16.6.5 निरस्त्रीकरण स्थापित करना

16.6.6 नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की पक्षधर

16.6.7 संयुक्त राष्ट्र में निष्ठा

16.6.8 विवादों को शान्तिपूर्वक हल करने का पक्षधर

16.7 सारांश

16.8 प्रश्नावली

16.9 पाठन सामग्री

16.1 प्रस्तावना

किसी भी देश की विदेश नीति राज्यों के मध्य संबंध स्थापित करने का माध्यम होता है। इस प्रकार सभी राज्य विश्व के अन्य राज्यों से आदान–प्रदान करते है। लेकिन इस नीति के पीछे सभी राष्ट्रों के राष्ट्रीय हित छिपे होते है लेकिन दूरगामी दृष्टि एवं निरन्तरता हेतु प्रत्येक राष्ट्र इन हितों की पूर्ति कुछ सिद्धान्तों एवं उद्देश्य के माध्यम से करता है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। स्वतन्त्र भारत ने भी अपने तीन प्रमुखों हितों राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक विकास एवं अनुकूल विश्व व्यवस्था हेतु गुटनिरपेक्षता एवं पंचशील के सिद्धान्तों की विदेश नीति का अचारण किया। क्योंकि विदेश नीति हमेशा गत्यात्मक होती है जो आन्तरिक व बाह्म कारकों के बदलाव स्वरूप बदल जाती है। इसीलिए शीतयुद्धोत्तर युग में आये बदलाओं के परिणाम स्वरूप भारत ने भी अपनी विदेश नीति में उपरोक्त सिद्धान्तों की जगह यथार्थवाद की नीति अपना कर अपने को शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में प्रदर्शित किया है। उसी अनुरूप शीतयुद्ध युगीन दृष्टिकोणों को त्याग कर नये समीकरणों को अपनाया है।

16.1.1 अध्याय के उद्देश्य

इस अध्याय के माध्यम से विदेश नीति क्या है? भारत में इसका विकास कैसे हुआ, भारत की विदेश नीति के सिद्धान्त व उद्देश्य क्या है आदि बातों का वर्णन प्रस्तुत है। इसके साथ–साथ विदेश नीति की विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त भारत की गुटनिरपेक्षता व पंचशील की नीतियों को अति विस्तार से प्रस्तुत किया गया। शीतयुद्धोत्तर युग में आये बदलाओं के परिणाम स्वरूप उत्पन्न नवीन प्रवृतियों की चर्चा भी प्रस्तुत है।

भारत की विदेश नीति

16.2 विदेश नीति क्या है?

किसी भी देश की विदेश नीति मुख्य रूप से कुछ सिद्धान्तों, हितों एवं उद्देश्यों का समूह होता है जिनके माध्यम से वह राज्य दूसरे राष्ट्रों के साथ संबंध स्थापित करके उन सिद्धान्तों की पूर्ति हेतु कार्यरत रहता है। इसी प्रकार प्रत्येक राज्यों की अपनी विदेश नीति होती है जिसके माध्यम से वे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने संबंधों का निरूपण करते है। विशेष रूप से सर्वप्रथम मॉडलस्की ने इसको परिभाषित करते हुए कहा था कि विदेश नीति समुदायों द्वारा विकसित उन क्रियाओं की व्यवस्था है जिसके द्वारा एक राज्य दूसरे राज्यों के व्यवहार को बदलने तथा उनकी गतिविधियों को अंतर्राष्ट्रीय वातारण में ढ़ालने की कोशिश करता है। परन्तु विदेश नीति की इस प्रकार की परिभाषा को अति सरलीकरण माना जाएगा क्योंकि विदेश नीति का उद्देश्य मात्र दूसरों के व्यवहार का परिवर्तन मात्र नहीं हो सकता है। अपितु इसके माध्यम से दूसरे राज्यों की गतिविधियों का नियंत्रण करना भी अति आवश्यक होता है। इस प्रकार विदेश नीति में परिवर्तन के साथ–साथ कई बार निरंतरता की आवश्यकता भी होती है। क्योंकि विदेशी नीति परिवर्तन एवं यथास्थिति दोनों प्रकार की नीतियों का समन्वय होता है। बल्कि फेलिम्स ग्रास तो इससे भी एक कदम आगे निकल जाते हैं जब वे कहते है कि कई बार किसी राज्य के साथ कोई संबंध न होना या उसके बारे में कोई निश्चित नीति न होना भी विदेश नीति कहलाता है। इस प्रकार विदेश नीति के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पहलू होते है। यह सकारात्मक रूप में जब होती है जब वह दूसरे राज्यों के व्यवहार का प्रयास करती है तथा नकारात्मक रूप में तब होती है जब वह दूसरे राज्यों के व्यवहार को परिवार्तित करने का प्रयास करती है।

अतः विदेश नीति उन सिद्धान्तों, हितो व उद्देश्यों के प्रति वचनबद्धता जिनके द्वारा एक राज्य दूसरे राज्यों के साथ अंतर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में अपने संबंधों का निर्वाह करता है। इस संदर्भ में विदेश नीति पर निर्णय लेने के साथ–साथ इसका अन्य राज्यों के साथ संबंधों का वहन करना भी अति महत्त्वपूर्ण हो जाता है। लेकिन इस प्रकार के व्यवहार के समय राज्य को अपने लाभ–हानि अर्थात् संसाधन एवं जोखिम दोनों का मूल्यांकन भी कर लेना चाहिए।

इस संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि विदेश नीति एवं राष्ट्रीय हितों के बीच एक गहन संबंध होता है। राष्ट्रहित विभिन्न संदर्भो में विदेश नीति हेतु आवश्यक भूमिका निभाते हैं– **प्रथम,** ये विदेश नीति को अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण के संदर्भ में सामान्य अभिविन्यास प्रदान करते है। **द्वितीय,** ये निकट भविष्य की स्थिति में विदेश नीति को नियंत्रण करने वाले मापदण्डों का विकल्प प्रदान करते हैं। **तृतीय,** राष्ट्रीय हित विदेश नीति को निरंतरता प्रदान करते हैं। **चतुर्थ,** इन्ही के आधार पर विदेश नीति बदलते हुए अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप में अपने आपको ढ़ालने में सक्षम हो सकती है। **पंचम,** राष्ट्रीय हित विदेश नीति को मजबूत आधार प्रदान करते हैं क्योंकि ये समाज के समन्विय एवं सर्वसम्मति पर आधारित मूल्यों की अभिव्यक्ति होते हैं। अन्ततः ये विदेशी नीति हेतु दिशा निर्देशन का कार्य करते हैं।

16.3 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

किसी भी देश की विदेश नीति एक विशिष्ट आन्तरिक एवं बाह्म वातावरण के स्वरूप द्वारा काफी हद तक निर्धारित की जाती है। इसके अतिरिक्त उसका इतिहास, विरासत, व्यक्तित्व, विचार धाराएँ, विभिन्न संरचनाओं आदि का प्रभाव भी उस पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। भारत भी इस स्थिति का अपवाद नहीं है। भारतीय विदेश नीति के प्रमुख लक्ष्यों के निर्धारण एवं सिद्धान्तों के प्रतिपादन में भी इन्ही बहुमुखी तत्त्वों का योगदान रहा है। अतः भारत की विदेश नीति के प्रमुख उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों को सही दिशा में समझने हेतु इसके ऐतिहासिक संदर्भ का अध्ययन करना अनिवार्य हैं। क्योंकि इस पृष्ठभूमि का विदेश नीति पर गहरा प्रभाव होता है। इस संदर्भ में टिप्पणी करते हुए जवाहरलाल नेहरू ने उचित ही कहा था कि यह नहीं समझना चाहिए की भारत ने एकदम नये राज्य के रूप में कार्य प्रारम्भ किया है। इसकी नीतियाँ हमारे भूत व वर्तमान इतिहास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास तथा इनके द्वारा अभिव्यक्त विभिन्न आदर्शो पर आधारित है।

इसलिए भारत की विदेश नीति का समझ एवं आंकलन हेतु भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एवं स्वाधीनता संग्राम के इतिहास पर दृष्टिपात करना अति आवश्यक बन पड़ा है। इस काल में होने वाले घटनाक्रमों के आधार पर ही स्वतंत्र भारत की विदेश नीति का विकास हुआ। स्वतंत्र भारत की विदेश नीति की जड़ें उन प्रस्तावों व नीतियों में ढूंढी जा सकती है जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपनी स्थापना के पश्चात् के 62 वर्षो (1885–1947) में महत्वपूर्ण विदेश नीति के विषयों पर अपनाई थी। यह सत्य है कि पराधीन भारत की विदेश नीति का निर्माण 1885 में स्थापित इंडिया हाउस, लंदन में होता था। अग्रेंज अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत का प्रतिनिधित्व करते थे। लेकिन फिर भी भारत अन्तर्राष्ट्रीय कानून के रूप में 'अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति' का दर्जा प्राप्त कर चुका था तथा कई विषयों पर कांग्रेस की प्रतिक्रियाओं के सकारात्मक परिणाम ही नहीं निकले, अपितु स्वतंत्र भारत की नीतियों हेतु ठोस आधार भी तैयार हो गया था। इसी आधार पर पराधीन भारत को अंतर्राष्ट्रीय सम्मेंलनों में भारत को भागीदारी प्राप्त होने लगी। इसके परिणाम स्वरूप ही भारत संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्था का 1945 में प्रारम्भिक सदस्य बन सका।

इसके अतिरिक्त, समय–समय पर राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा अभिव्यक्त विचारों ने भारतीय विदेश नीति के मुख्य आधारों की स्थापना की। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा विभिन्न प्रस्ताओं एवं प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप विभिन्न सिद्धान्तों की उत्पति हुई 1. भारतीय कांग्रेस द्वारा सदैव साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद का खंडन करना बाद के वर्षो में भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति का भी प्रमुख लक्ष्य रहा 2. भारतीय कांग्रेस द्वारा स्वयं को समय–समय पर इंग्लैड की विदेश नीतियों से असमबद्ध घोषित करने के कारण बाद के वर्षो में भी अपने आपको महाशक्तियों के हितों से अपने को अलग रखने में सक्षम रहा, 3. मुस्लिम राष्ट्रों से सहयोग की नीतियों के कारण स्वतंत्र भारत ने भी हमेंशा अबर राष्ट्रों का ही साथ दिया, 4. कांग्रेस द्वारा एशियाई एवं पिछड़े राष्ट्रों के प्रति सहानुभूति के कारण स्वतंत्र भारत में भी अफ्रीकी व एशियाई राष्ट्रों के समर्थन की नीति अपनाई तथा 5. विदेश नीति की स्थापना व निर्माण के संदर्भ में भी राष्ट्रीय कांग्रेस की पहल को ही आगे बढ़ाया। अतः यह

कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि भारत की विदेश नीति निर्धारण में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वतंत्र भारत की विदेश नीति पर ब्रिटिश विरासत, स्वाधीनता संग्राम के अनुभवों, राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रतिक्रियाओं, स्वतंत्रता आंदोलन के नेतृत्व आदि का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। इन्ही प्रयासों एवं बदली हुई राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्थिति तथा अन्य नीति निर्धारक तत्वों ने स्वतंत्र भारत की विदेश नीति के मुख्य उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों को जन्म दिया है।

16.4 उद्देश्य

प्रत्येक राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति हेतु विदेश नीति के उद्देश्य तय करते है। भारत की विदेश नीति ने भी अपने राष्ट्रीय हितों के अनुरूप विभिन्न उद्देश्य निर्धारित किए है। भारत की विदेश नीति के उद्देश्यों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है– (क) प्रमुख उद्देश्य; तथा, (ख) अन्य उद्देश्य। इनके अन्तर्गत निम्नलिखित विषयों को सम्मिलित किया जा सकता है।

16.4.1 प्रमुख उद्देश्य

1. राष्ट्रीय सुरक्षा
2. आर्थिक विकास
3. उपयुक्त विश्वव्यवस्था

16.4.2 अन्य उद्देश्य

1. उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद व रंगभेद का विरोध
2. निरस्त्रीकरण का समर्थक
3. एशिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका
4. अफ्रो–एशियाई क्षेत्रीय सहयोग
5. संयुक्त राष्ट्र में आस्था
6. सभी राष्ट्रों से मैत्रीपूर्ण संबंध
7. भारतीय मूल एवं प्रवासी भारतीयों की रक्षा

16.5 सिद्धान्त

भारत ने विदेश नीति के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कुछ सिद्धान्तों का पालन किया है। सिद्धान्त न केवल विदेश नीति के तर्क संगत विश्लेषण में सहायक होते हैं, बल्कि नीति को निरंतरता भी प्रदान करते हैं। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलन के अनुभवों एवं स्वतंत्र भारत के समक्ष विश्व की उभरती स्थिति ने मुख्य रूप से भारत की विश्व नीति के सिद्धान्तों की उत्त्पति की है।

भारतीय विदेश नीति के सिद्धान्तों को भी दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है जो निम्न प्रकार से है–

16.5.1 प्रमुख सिद्धान्त

1. गुटनिरपेक्षता
2. पंचशील

16.5.2 अन्य सिद्धान्त

1. यथार्थवाद
2. गत्यात्मकता एवं अनुरूपता
3. शान्तिपूर्ण सहअस्तित्त्व

16.6 विदेश नीति की प्रमुख विशेषताएँ

पिछले 56 वर्षो के इतिहास पर नजर डालने से भारत की विदेश नीति की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट रूप से उजागर होती है।

16.6.1 गुटनिरपेक्षता की नीति

भारत की विदेश नीति का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू एवं केन्द्रबिन्दू है। इसकी घोषणा स्वतंत्रता से पूर्व ही अन्तरिम सरकार के उपाध्यक्ष के रूप में जवाहरलाल नेहरू ने अपने प्रथम रेडियो भाषण के रूप में 7 सितम्बर 1946 को ही कर दी थी। इस विदेश नीति को अपनाने के दो प्रमुख स्त्रोत रहे है– भौतिक तत्त्व एवं गैर–भौतिक तत्त्व। भौतिक तत्त्वों में प्रमुख रूप से भारत की तत्कालिक भू–राजनैतिक स्थिति एवं आर्थिक स्थिति महत्त्वपूर्ण रहे है। गैर–भौतिक तत्त्वों में भारत की ऐतिहासिक विरासत भारतीय दर्शन एवं परम्पराएँ प्रभावी रहे हैं।

इसके बारे में विस्तारपूर्वक जानने से पहले यह जानना जरूरी है कि गुटनिरपेक्षता क्या है? सामान्य रूप से इसे सैन्य गठबन्धनों से अलग रहने की नीति मानते हैं। परन्तु यह विदेश नीति बहुत व्यापक एवं गतिशील है। अतः यह उपरोक्त से कहीं अधिक उपयुक्त मानी जा सकती है। इस नीति के दो सकारात्मक एवं नकारात्मक – पहलू है। नकारात्मक रूप में इसे 1. सैन्य गुटों या शीतयुद्ध गुटबन्दियों से अलग रहना; तथा 2. सैन्य गठबन्धनों में शामिल न होने की नीति माना जा सकता है। सकारात्मक रूप में इसे 1. विश्व शान्ति स्थापित करने; 2. उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, रंगभेद आदि समाप्त करने; 3. विश्व में स्वतंत्रता का प्रसार करने; 4. सभी राष्ट्रों के मध्य सहयोग विकसित करने; तथा 5. नव–स्वतंत्र राष्ट्रों की सहायता करने की नीति माना जा सकता है।

गुटनिरपेक्षता की नीति को लेकर विदेशी विशेषज्ञों के मन में कई भ्रांतियाँ थी। शायद इसलिए उन्होंने नेहरू के आशयों पर विश्वास करने के बजाय इसे अन्य विदेश नीतियों जैसे अलगाववाद, गैर–सम्बद्धता, तटस्थता, तटस्थीकरण, एकलवाद, अहिस्सेदारी आदि धारणाओं के समकक्ष माना। लेकिन नेहरू ने उनके इन विचारों का खण्डन करते हुए स्पष्टीकरण दिए। उनका कहना था कि जहां तक 'तटस्थता' व 'तटस्थीकरण' का प्रश्न है ये दोनों ही धारणाएँ बहुत सीमित हैं, क्योंकि आज के सन्दर्भ में विश्व युद्धों से तटस्थ रहना सम्भव नहीं है। इसके विपरीत गुटनिरपेक्ष देश को तो युद्ध में हिस्सा लेना पड़ सकता है यदि वह उसके हितों के विरूद्ध है। इसलिए जहां स्वतंत्रता, न्याय अथवा युद्ध होंगें वहां भारत तटस्थ नहीं रह सकता। इसी प्रकार 'अलगाववाद' के विषय में नेहरू का मानना था कि सैन्य गुटबन्दियों में हिस्सा न लेना अलगाववाद नहीं है। कई लेखकों ने इसे 'तीसरी शक्ति' के रूप में भी माना है। परन्तु यह नीति दोनों गुटों के बीच टकरावया संघर्ष की नीति न होकर अन्ततः एक विश्व व्यवस्था की कामना करती है अतः यह तीसरी शक्ति भी नही हो सकती।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या कारण थे कि भारत ने इसे नीति का अनुसरण किया तथा इसके भारत हेतु क्या परिणाम निकले। भारत की स्वतंत्रता के समय की स्थिति व बाद के अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम को देखने से ज्ञात होता है कि इस नीति को अपनाने हेतु निम्नलिखित बहुमुखी कारण थें–

1. भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद व रंगभेद के विरूद्ध एक लम्बा संघर्ष था

इसलिए आजादी के बाद भारत का इन मुछों के विरूद्ध लड़ना अनिवार्य था। इस प्रकार का संघर्ष भारत विश्व सैन्य गुटों से अलग रहकर एक स्वतंत्र विदेश नीति के द्वारा ही कर सकता था।

2. भारत की भू–राजनैतिक व्यवस्था के फलस्वरूप इसे इस नीति को अपनाना पड़ा। भारत के निकट पड़ोस में दो साम्यवादी ताकतों (सोवियत संघ व चीन) का होना तथा भारत के पड़ोसी देश के साथ सीमा विवाद को लेकर भारत किसी भी गुट बन्धन से अलग रहना चाहता था
3. भारत की उस समय की आर्थिक एवं सैन्य क्षमता तथा भविष्य में भारत की आर्थिक विकास की इच्छाओं के कारण भी उसे विश्व के सभी देशों से पूंजीनिवेश, आर्थिक सहायता, व्यापार आदि की बहुत आवश्यकता थी। अतः वह किसी एक गुट के साथ जुडना ज्यादा लाभप्रद नहीं मानता था।
4. विभिन्न देशों से जुडना एक यथार्थवादी पदृिश्य भी था क्योंकि इससे भारत के पास अपने विकास के विभिन्न विकल्प उपलब्ध थे।
5. एक नव – स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में भारत अब अपनी धरेलू एवं बाह्म नीतियों में किसी अन्य राष्ट्र का हस्तक्षेप पसंद नहीं करता था।
6. नेहरू का अपना व्यक्तित्व, नये राष्ट्र के समक्ष अपनी स्वतंत्र पहचान की चाह एवं विकास की बाध्यताओं के अनुरूप भी यही नीति अधिक श्रेयस्कर प्रतीत हुई।

उपरोक्त आन्तरिक एवं बाह्म कारणों से अपनाई गई गुटनिरपेक्षता की नीति के भारत के लिए निम्न परिणाम देखने को मिले–

1. इसका अर्थ यह निकला कि भारत को अब अपनी नीति में सैन्य के स्थान पर विकास को वरीयता प्रदान करनी होगी। यह केवल आदर्शवादिता ही नहीं थी, अपितु अनिवार्यता थी।
2. भारत की आर्थिक सहायता की मांग को देखते हुए भी अब इसे विश्व में सैन्य खर्चो में कटौती तथा गैर–सैन्य तरीकों के द्वारा विश्व शान्ति हेतु प्रयास करना आवयश्यक हो गया।
3. भारत को आर्थिक सहायता का स्वरूप भी अपने को दूसरे राष्ट्रों पर निर्भर न बनाते हुए चुनना था। इसीलिए उसे सभी प्रमुख अर्थव्यवस्था से जुड़ना था। अतः इसकी अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक एवं व्यक्तिपरक या निजी क्षेत्रों को बराबर स्थान देना आवश्यक था।
4. भारत की सुरक्षा मात्र सभी देशों से अच्छे संबंधों के कहने मात्र से आश्वस्त नहीं हो जाती हैं। इस दृष्टि से भारत का अपने राज्यों की रक्षा सामर्ध्य बढ़ाने की बजाए, राजनैतिक/राजनयिक विकल्पों पर जोर देने वाला बनना होगा।
5. शीतयुद्ध की प्रवृतियों के महत्वपूर्ण हो जाने से भारत को इन गठबंधनों से दूर रहते हुए विश्व शान्ति हेतु वैकल्पिक प्रयास करने होंगे।
6. परमाणु शक्ति के खतरों को देखते हुए भारत को निरस्त्रीकरण बढ़ाने हेतु प्रयास ही नहीं करने होंगे बल्कि इसे अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रमुख परम्परा के रूप में विकसित करना होगा।

अतः जहां तक भारत द्वारा गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाने का प्रश्न है कि इसके माध्यम से नेहरू ने प्रमुख उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए कहा था कि इससे भारत स्वतंत्र विदेश नीति, गुटों से अलग रहना, विश्व शान्ति, आर्थिक विकास आदि प्राप्त करना चाहता है। इसके अतिरिक्त, भारत अपनी राष्ट्रीय गरिमा के साथ–साथ नवोदित राष्ट्रों की समस्या से भी अवगत था। अतः इस नीति के माध्यम से भारत उपनिवेशवाद,

साम्राज्यवाद तथा रंगभेद की नीतियों के भी विरूद्ध था। परन्तु भारत उपनिवेशवाद का शिकार होते हुए भी किसी के विरूद्ध स्थाई कट्टरता का रूख नहीं रखता था। अतः भारत ब्रिटेन, अमेरिका, चीन, पूर्व सोवियत संघ आदि सभी देशों के साथ मित्रतापूर्वक संबंध बनाते हुए अन्ततः शान्तिपूर्ण व सहअस्तित्व पर आधारित एक विश्व स्थापित करने की दिशा में आस्था रखता था।

भारत की सुरक्षा हेतु इस नीति के अन्तर्गत भारत ने सैनिक क्षमता या गुटबन्दी के स्थान पर राजनय को सशक्त माध्यम बनाया। परिणामस्वरूप एक ओर भारत ने दोनों महाशक्तियों से समान दूरी वाले संबंध विकसित करने के प्रयास किए, वहीं दूसरी ओर पड़ोसी राष्ट्रों से मित्रतापूर्वक संबंध बनाने की भरसक कोशिश की। भारत ने इस सन्दर्भ में प्रारम्भ से ही पाश्चात्य देशों (विशेषतौर पर) अमेरिका से मधुर संबंध बनाने के प्रयास किए परन्तु अमेरिका की नीतियों के कुछ प्रमुख विरोधाभाषों के कारण ऐसा संभव नहीं हो सका। पूर्व सोवियत संघ के साथ भी प्रारम्भ में थोड़ी सी दूरी बनी रही परन्तु शीघ्र ही दोनों के बीच घनिष्ठ संबंधों का विकास हुआ। 1970 के दशक तक आते–आते दोनों के बीच कुछ मुख्य मुद्दों को लेकर समान दृष्टिकोणों का विकास हुआ। ये मुद्दे थे– नवोदित राष्ट्रों की स्वतंत्रता का समर्थन, हिन्द महासागर में बढ़ते सैन्यीकरण का विरोध, तीसरी दुनिया के देशों का विकास, मुख्य तौर पर समाजवादी व्यवस्था में आस्था आदि। इसके बाद शीत युद्ध के अन्त के बाद रूस से संबंधों की निरन्तरता के साथ–साथ, अमेरिका से भी मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित कर लिए। पड़ोसियों के साथ भी पंचशील के ढाँचे के अन्तर्गत द्विपक्षीय एवं क्षेत्रीय आधार पर संबंधों को मजबूत बनाया। लेकिन कई कारणों से पाकिस्तान से समस्याओं के समाधान में अभी भी कड़वाहट बनी हुई है।

पिछले 56 वर्षों में गुटनिरपेक्षता की नीति की सफलताओं एवं असफलताओं का आंकलन करने से ज्ञात होता हैं कि इसके माध्यम से भारत को अपने हितों की पूर्ति में आंशिक सफलता प्राप्त हुई।

1. सर्वप्रथम, 1950 व 1960 के दशकों में इस नीति के आधार पर भारत कुछ मामलों में बहुत सफल रहा। उदाहरणस्वरूप, नव–स्वतंत्र राष्ट्रों की मांगों को अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर उठाने के सन्दर्भ में भारत को आशातीत सफलता प्राप्त हुई। परन्तु वहीं दूसरी ओर 1962 चीन व 1965 में पाकिस्तान युद्ध के समय गुटनिरपेक्ष देशों से समर्थन प्राप्ति को लेकर भारत को घोर निराशा हुई। 1962 के युद्ध के समय कोई भी गुटनिरपेक्ष देश चीन को आक्रमणकारी कहने को राजी नहीं हुआ चीन व भारत के मामलों को सुलझाने सम्बन्धित पहल भी बहुत प्रभावी नहीं रही। 1965 के युद्ध के समय यह स्थिति और भी भयंकर सिद्ध हुई। गुटनिरपेक्ष राज्यों, द्वारा भारत को समर्थन तो दूर बल्कि कई देशों ने (मुख्य रूप से इंडोनेशिया) पाकिस्तान को भारत के विरूद्ध लड़ने हेतु हथियार भी प्रदान किए। इस प्रकार इन दशकों में गुटनिरपेक्षता की नीति भारत को सुरक्षा प्रदान करने में विफल रही।
2. द्वितीय, परन्तु 1971 के भारत–पाकिस्तान युद्ध के समय इसी नीति का अनुसरण करते हुए भारत को अत्याधिक सफलता मिली। भारत केवल अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान से ही निपटने में सफल नहीं रहा, अपितु पाकिस्तान–चीन–अमेरिका त्रिगुट को भेदने में सफल रहा। भारत की इस सफलता का मुख्य केन्द्र बिन्दु पूर्व सोवियत संघ के साथ हस्ताक्षरित मित्रता एवं सहयोग की सन्धि को माना जाता है। लेकिन गुटनिरपेक्षता की नीति ने ही भारत को आवश्यक लचक प्रदान की जिससे वह अपने राष्ट्रीय हितों के अनुरूप अपनी विदेश नीति को ढालने में सक्षम रहा।
3. भारत की विदेश नीति को सबसे महत्वपूर्ण चुनौती 1991 के बाद शीत युद्ध की समाप्ति के बाद हुए परिवर्तनों के अनुरूप अपने आपको ढालने की थी। भारत ने इस अन्तर्राष्ट्रीय संकट की घड़ी में भी अपने हितों की उचित रक्षा की। गुटनिरपेक्ष के लचीलेपन के कारण ही भारत जहां एक ओर पूर्व

सोवियत संघ के हसयोग पर आश्रित अपनी स्थिति बदलकर अमेरिका से निकट सहयोग बनाने में सक्षम रहा वहीं दूसरी ओर भारत ने अपने को साम्यवादी देशों से विफल आर्थिक व व्यापारिक हितों को आशियान व पूर्वी एशिया के देशों से जोड़ने में सफलता प्राप्त की। इसके अतिरिक्त, परमाणु अप्रसार, सीटी बीटी व प्रक्षेपास्तों के प्रतिबन्धों से निपटने तथा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर आमसहमति विकसित करने में भी सफलता प्राप्त की। इस प्रकार शीतयुद्धोत्तर युग में नवीन समीकरणों द्वारा अपने राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति में सफलता के लिए गुटनिरपेक्षता की नीति द्वारा आवश्यक लचीलापन प्राप्त हुआ।

1. इस प्रकार गुटनिरपेक्षता की नीति ने विभिन्न क्षणों एवं चुनौतियों के सन्दर्भ में भारत को राजनयिक लचीलापन प्रदान किया है। ताकि यह अपने राष्ट्रीय हितों को प्राप्त करने में सक्षम हो सके। यद्यपि प्रारम्भिक संकटों में इसके माध्यम से भारत को सफलता नहीं मिल सकी, परन्तु बाद के वर्षों में यह भारत के लिए अनुकूल साबित हुई। इसके अतिरिक्त, इस नीति के अग्रणीय नेता होने के कारण जवाहरलाल नेहरू अपने समान विचार रखने वाले नेताओं (नासिर, टीटो एवं सुकार्णो) के साथ इसे आन्दोलन का रूप देने में सफल रहे। इसीलिए इसे आन्दोलन के जनक के रूप मान्यता प्राप्त है। इसीलिए तीसरी दुनिया के देशों में भारत की छवि इन देशों को नेतृत्व प्रदान करने वाली भी बनी। इसके अतिरिक्त, भारत को विभिन्न देशों से आर्थिक सहायता, तकनीक, पूंजीनिवेश आदि प्राप्त होने से सहायता सिद्ध हुई। इस नीति के कारण ही भारत विश्व में शीतयुद्ध युगीन दोनों गुटों से समन्वय बनाने में सफल रहा। वर्तमान शीतयुद्धोतर में आवश्यक लचीलेपन की आवश्यकता की पूर्ति भी भारत को इसी नीति के माध्यम से रही। यद्यपि आज यह विवाद जारी है कि शीतयुद्धोतर युग के नवीन ध्रुवीकरण के कारण यह नीति निरर्थक बन गई है। परन्तु यह सत्य नहीं है, क्योंकि गुटनिरपेक्षता की राष्ट्र की विदेश नीति एवं आन्दोलन दो अलग–अलग वस्तु हैं। तीसरी दुनिया के एक आन्दोलन के रूप में यह अवश्य शिथिल पड़ गया है, परन्तु एक राष्ट्र की विदेश नीति के रूप में यह हमेंशा सार्थक रहेगी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भारत है जिसने विश्व में हुए विभिन्न उतार–चढ़ावों के बावजूद इस नीति के माध्यम से अपने हितों की सफलतापूर्वक पूर्ति की है।

16.6.2 पंचशील को अपनाना

भारतीय विदेश नीति में पंचशील की नीति इसके नैतिक एवं शान्ति स्थापना के मूल्यों का द्योतक है। पंचशील इस दृष्टि से गुटनिरपेक्षता के सिद्धान्त का ही भाग है। इसके माध्यम से भारत ने अपने पड़ोसियों से संबंधों के मापदण्डों की घोषणा की है। यह सिद्धान्त भारत के ही नहीं अपितु किन्हीं दो पड़ोसियों के आदर्श संबंधों के मापदण्ड भी कहे जा सकते है। जवाहरलाल नेहरू अपनी गुटनिरपेक्षता की नीति को केवल कल्पना तक ही सीमित नहीं रखता चाहते थे, अपितु विश्व शान्ति स्थापना हेतु इसे व्यवहारिक स्वरूप प्रदान करना चाहता थे। इसीलिए इस नीति के क्रियान्वन हेतु शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के पाँच सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इन सिद्धान्तों को सर्वप्रथम 29 अप्रैल 1954 के भारत–चीन व्यापारिक समझौते की प्रस्तावना में प्रतिपादित किया गया। जिसे बाद में 28 जून, 1954 को चीन के प्रधानमंत्री चाऊ–एन–लाई की भारत यात्रा के दौरान जारी संयुक्त घोषणापत्र में दोहराया गया। पंचशील के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

1. एक–दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता व सर्वोच्च सत्ता के लिए परस्पर सम्मान की भावना;
2. अनाक्रमण
3. परस्पर आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना
4. समानता व पारस्परिक लाभ, तथा
5. शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व

नेहरू के लिए यह सिद्धान्त मात्र भारत–चीन सहयोग तक ही सीमित नहीं था, अपितु यह भारत के संघर्षों का अन्त हो सकता है। पंचशील द्वारा, गुटनिरपेक्षता की भांति, नेहरू एशिया में 'शान्तिक्षेत्र' को बढ़ाना चाहते थे ताकि इसके अधिप्लावन प्रभावस्वरूप सम्पूर्ण विश्व में शान्ति स्थापित हो सके। शायद यही कारण था कि इस सिद्धान्त को अफ्रो–एशियाई देशों के बाण्डुग (इन्डोनेशिया) सम्मेलन 1955 तथा 14 दिसम्बर 1959 को संयुक्त राष्ट्र महासभा के 82 देशों द्वारा इसे भारत की पहल पर स्वीकृत किया। इस प्रकार यह सिद्धान्त भारत द्वारा संघर्ष व युद्ध के विकल्प के रूप में चीन, अपने अन्य पड़ोसी राज्यों तथा विश्व राष्ट्रों हेतु शान्ति स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम था। यद्यपि 1962 के भारत–चीन युद्ध ने इसकी सफलता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया था, परन्तु भारत ने इसका अनुसरण करना नहीं छोड़ा। इसके विपरीत शीतयुद्धोतर भारत–चीन के सुधरते सम्बन्धों में इस सिद्धान्त को दोबारा व्यवहार में लाया जा रहा है। उदाहरणस्वरूप, 1988 के बाद इन दोनों देशों के सुधरते संबंधों के परिणामस्वरूप राजीव गाँधी (1988), पी०वी० नरसिम्हाराव (1993), के.आर. नारायणन (1999) तथा अटल बिहारी वाजपेयी (2003) की चीन यात्राओं तथा ली पेंग (1991), जियांग जमीन (1996), ली पेंग (2001) तथा झू रोंगजी (2002) की भारत यात्राओं के दौरान दोनों देशों ने पंचशील के सिद्धान्तों में फिर संयुक्त घोषणापत्रों के माध्यम से आस्था अभिव्यक्त की है।

16.6.3 शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व में आस्था

भारत की विदेश नीति की एक अन्य विशेषता यह है कि वह शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व में विश्वास रखती है। यद्यपि यह सिद्धान्त पंचशील का ही एक हिस्सा है, तथापि यह एक व्यापक अर्थ रखती है। व्यापक संदर्भ में यह भारत की 'जियो और जीने दो' की परम्परा का धोतक है। इस पंचशील से एक संदर्भ में अलग देखा जा सकता है, क्योंकि शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व द्वारा विश्व में वैचारिक या अन्य किन्हीं आधारों पर स्थापित भेदभाव की मान्यता को अस्वीकार कर सभी राष्ट्रों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों की स्थापना पर बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त, सैन्य गठबंधनों के संबंध में भी उनके गुट में भागीदारी न करते हुए भी अन्य क्षेत्रों में संबंध विकसित करने की मनाही नहीं है। शीतयुद्ध काल में साम्यवादी एवं पूंजीवादी गुटों की सैन्य नीतियों की आलोचना करते हुए भी सीमित स्तर तक आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी, सांस्कृतिक आदि संबंधों का विकास जारी रहा। इस प्रकार विश्व शान्ति व विकास की सभी प्रतिक्रियाओं में सभी राष्ट्रों से मित्रतापूर्वक एवं सद्भावना आधारित संबंधों पर बल दिया। शीतयुद्धोतर भी विभिन्न राज्यों से परमाणु अप्रसार, भावी आर्थिक विश्व व्यवस्था, संयुक्त राष्ट्र का प्रजातान्त्रिकरण, निरस्त्रीकरण, संयुक्त राष्ट्र की भूमिका, युद्ध एवं शान्ति के मुद्दों आदि विषयों पर मतभेद होने के बावजूद भी इनसे व्यापार, पूंजीनिवेश, प्रौद्योगिकी सहयोग आदि आज भी जारी है।

16.6.4 साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद एवं रंगभेद का विरोध

भारत ने उपनिवेशवाद के विरूद्ध अपना संघर्ष अति गंभीर रूप से लिया। भारत ने इसे केवल अपने देश की स्वतन्त्रता तक ही सीमित न रखकर सम्पूर्ण उपनिवेशवादी ताकतों के विरूद्ध तथा सभी अधीन देशों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण के रूप में लिया है। इस सन्दर्भ में सबसे महत्वपूर्ण लड़ाई भारत ने इंडोनेशिया की स्वतन्त्रता के रूप में लड़ी। भारत ने संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से ही नहीं, बल्कि नई दिल्ली में 1949 में एशियाई देशों का सम्मेंलन बुलाकर इंडोनेशिया की आजादी हेतु भरसक प्रयास किए। जिनके परिणामस्वरूप अन्ततः इंडोनेशिया को पूर्ण स्वतन्त्र राज्य घोषित कराने में सफल हुआ। 1950 के दशक में भारत ने कई राष्ट्रों की स्वतन्त्रता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इसमें प्रमुख रूप से इटली एवं फ्रांस के अधीन उपनिवेशों को स्वतन्त्र कराने के प्रयास शामिल है। भारत ने इटली के पूर्व उपनिवेश लीबिया, इरिटेरिया व इटालियन सोमालीलैंड (1949–52) तथा फ्रांस के पूर्व उपनिवेशों मोरक्कों (1951–56), तुनिसिया (1952–56) तथा साइप्रस (1956–60) को भी मुक्त कराया। अतः 1950 व 60 के

दशकों में ज्यादातर अफ्रीकी व एशियाई देशों को उपनिवेशवाद से मुक्त कराने हेतु भारत ने संयुक्त राष्ट्र के मंचों एवं इसके बाहर बहुत महत्वपूर्ण प्रयास किए। रंगभेद की नीतियों के विरूद्ध भी भारत ने भरसक प्रयत्न किए। दक्षिणी अफ्रीका में रंगभेद की नीतियों का विरोध महात्मा गांधी से लेकर स्वतन्त्र भारत में भी बहुत सशक्त रूप से हुआ। भारत ने लम्बे समय तक इस देश के साथ अपने राजनयिक सम्बन्ध भी इसी नीति के विरोध स्वरूप स्थापित नहीं किए। संयुक्त राष्ट्र, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मंचों के माध्यम से इन नीति को समाप्त करने की बात बहुत ही सशक्त रूप से पेश की। यद्यपिइ स रंगभेद के विरूद्ध भारत की लड़ाई में अमेरिका व इंग्लैंड का पूर्ण सहयोग प्राप्त न होने के कारण कोई कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। परन्तु फिर भी भारत जनमत को इसके विरूद्ध करने में सफल रहा। भारत के निरन्तर प्रयासों के कारण सुरक्षा परिषद ने दक्षिणी अफ्रीका की सरकार के विरूद्ध प्रतिबंधों की घोषणा की। 1963 में इन प्रतिबंधों के अन्तर्गत इस देश को भेजे जाने वाले सभी सैन्य सामानों पर रोक लगा दी गयी है। 1965 में इस देश के विरूद्ध आर्थिक प्रतिबन्धों की घोषणा की गई। इस समस्या की ओर अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का ध्यानाकर्षण हेतु 1971 को संयुक्त राष्ट्र द्वारा 'रंगभेद नीति पर नियन्त्रण हेतु कार्य करने का अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित किया गया। इस प्रकार भारत की सक्रिय भूमिकाओं के साथ–साथ अन्य एशियाई व अफ्रीकी देशों के समर्थन से जिम्बावे (1980), नामीबिया (1990) आदि की स्वतंत्रता के साथ–साथ दक्षिणी अफ्रीका में रंगभेद रहित सरकार की स्थापना हुई। अतः भारत की विदेश नीति में रंगभेद के विरूद्ध संघर्ष एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। भारत अपने विदेश नीति के सिद्धान्तों एवं व्यवहार में हमेंशा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर रंगभेद नीति की समाप्ति हेतु प्रसासरत ही नहीं रहा, अपितु अग्रणीय राष्ट्रों में से रहा है। उसने इस मुद्दे पर पहल ही नहीं की अपितु इसे व्यवहारिक दर्जा देने हेतु अपने राष्ट्रीय हितों की परवाह न करते हुए सभी महत्वपूर्ण कदम उठाए। अन्ततः भारत के दबावो, जनमत तथा तीसरी दुनिया के देशों के सामूहिक प्रयासों से भारत को इस नीति को समाप्त करने में सफलता प्राप्त हुई।

16.6.5 निरस्त्रीकरण स्थापित करना

भारत ने सदैव विश्व में सामान्य एवं व्यापक निरस्त्रीकरण हेतु प्रयास किए हैं। इस सन्दर्भ में संयुक्त राष्ट्र या उसके बाहर सभी मंचों पर निरस्त्रीकरण की प्रबल वकालत करने वाले राष्ट्रों में हमेंशा भारत अग्रणीय स्थान रहा है। भारत ने सदैव संयुक्त राष्ट्र द्वारा पारित प्रस्तावों का समर्थन किया है या अपने ज्ञापनों एवं संशोधनों के माध्यम से इस प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाया है। इस दिशा में नेहरू सबसे पहले व्यक्ति थें, जिन्होंने परमाणु शस्त्रों से मुक्त विश्व स्थापित करने हेतु 2 अप्रैल 1954 में संयुक्त राष्ट्र में "स्टैंडस्टील रैजोल्यूशन" प्रस्तुत किया। परन्तु जब 1959 तक भारत के बार–बार दोहराने के बाद भी कोई कार्यवाही नहीं हुई तब भारत की पहल पर 1961 में महासभा ने 'निरस्त्रीकरण समिति' के रूप में एक स्थाई समिति की स्थापना पर सहमति व्यक्त की। इस प्रयासों के फलस्वरूप ही 1963 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा मास्को टेस्ट बेन ट्रीटी आंशिक परमाणु प्रतिबन्ध सन्धि (पी.टी.बी.टी) पर सहमति हुई। इसे पांच परमाणु शक्तियों एवं भारत सहित कई राज्यों ने स्वीकृति प्रदान की।

यह सर्वविदित है कि 1963 की सन्धि आंशिक थी, क्योंकि इसके माध्यम से केवल जल, वायु तथा थल पर ही परमाणु परीक्षणों पर प्रतिबन्ध लगाया था, लेकिन भू–गर्भ द्वारा किए जाने वाले परीक्षणों पर कोई रोक नहीं लगाई गई थी। भारत ने गुटनिरपेक्ष देशों के माध्यम से 'निरस्त्रीकरण समिति' के माध्यम से एक नई सन्धि के पारित होने पर बल दिया। इसके परिणामस्वरूप 12 जून 1968 को परमाणु अप्रसार सन्धि (एनपी.टी.) पर सहमति हो गई जिसे मार्च 1970 से माना गया। परन्तु भारत ने इस सन्धि की कमियों के कारण आज तक उस पर हस्ताक्षर नहीं किए है। भारत का इस सन्दर्भ में मुख्य विरोध इस सन्धि का महासभा द्वारा पारित नवम्बर 1965 में 18 राष्ट्रों की समिति के प्रस्तावों के अनुरूप न होना है। उस प्रस्ताव में सम्मिलित चार मुख्य आधारों की पूर्ति इस सन्धि के माध्यम से नहीं होती है। ये चार प्रमुख तत्व थे– 1. इस सन्धि द्वारा परमाणु राष्ट्रों एवं गैर–परमाणु राष्ट्रों द्वारा परमाणु प्रसार पर पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिए; 2. इससे परमाणु एवं गैर परमाणु राष्ट्रों के बीच परस्पर उत्तरदायित्व व कार्यों के

बीच तालमेंल होना चाहिए; 3. यह सामान्य एवं व्यापक निरस्त्रीकरण, विशेषकर परमाणु निरस्त्रीकरण, स्थापित करने की दिशा में कदम होना चाहिए; तथा 4. इसमें इस सन्धि को प्रभावी करने सम्बन्धित धाराओं का प्रावधान होना चाहिए। बाद के वर्षों में भारत ने इस सन्धि के भेदभाव पूर्ण होने तथा व्यापक न होने के कारण भी हस्ताक्षर करने से मना कर दिया।

परमाणु अप्रसार सन्धि से उत्पन्न गतिरोधों के बावजूद भी भारत ने व्यापक आधार वाली सन्धि पर सहमति के प्रयास जारी रखे। परन्तु 1978 तक ज्यादातर निरस्त्रीकरण सम्बन्धित प्रयास दोनों महाशक्तियों के बीच ही सिमट कर रह गए। काफी समय बाद 1978 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने निरस्त्रीकरण पर पहला विशेष सम्मेंलन बुलाया। इसी कड़ी में द्वितीय विशेष सम्मेंलन, 1982 में श्रीमति इंदिरागांधी ने परमाणु शस्त्रों के प्रयोग न करने पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेंलन बुलाने, परमाणु हथियारों के उत्पादन या विस्फोटक सामग्री के उत्पादन पर प्रतिबन्ध लगाने, तथा सभी हथियारों से जुड़े परमाणु परीक्षणों पर तुरन्त प्रतिबन्ध लगाने के बारे में सुझाव दिए।

संयुक्त राष्ट्र का तीसरा विशेष सम्मेंलन जून 1988 में बुलाया गया जिसमें भारत ने विशेष भूमिका निभाई। राजीव गांधी ने इस सन्दर्भ में सन् 2010 तक विश्व को परमाणु हथियारों से मुक्त बनाने हेतु महत्वपूर्ण रूपरेखा पेश की। यह प्रस्ताव तीन चरणों में पूरा होना था। प्रथम चरण (1988–1994) में मुख्य रू‍प से आणविक हथियारों में भारी मात्रा में कटौती, परमाणु हथियारों एवं विस्फोटक सामग्री के उत्पादन पर प्रतिबन्ध, परमाणु परीक्षणों पर प्रतिबन्ध, परमाणु हथियारों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध, अन्तरिक्ष में हथियारों के परीक्षणों एवं विस्थापन पर रोक, संयुक्त राष्ट्र जाँच व्यवस्था आदि को सम्मिलित किया गया। इसके अतिरिक्त, नाटो एवं वारस सन्धि देशों के पारम्परिक हथियारों में कटौती की बात भी की गई। द्वितीय चरण (1995–2000) में, प्रथम चरण की गतिविधियों को आगे बढ़ाने के कार्यक्रम निर्धारित किए गए। इसमें मुख्य रूप से पारम्परिक हथियारों के सैन्य सम्बन्धित अड्डों की समाप्ति करने, एक व्यापक विश्व सुरक्षा व्यवस्था बनाने, संयुक्त राष्ट्र को मजबूत बनाने आदि के कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया। तृतीय चरण (2001–2010) में मुख्य रू‍प से सभी राज्यों के लिए कम से कम आवश्यक सुरक्षा सम्बन्धित निरस्त्रीकरण होना चाहिए तथा अहिंसा पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के नये ढाँचे का निर्माण होना चाहिए। इस कार्यक्रम के माध्यम से राजीव गाँधी का मानना था कि सभ्य समाज हेतु अहिंसा पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय संबंध ही केवल एकमात्र विकल्प है।

इसके अतिरिक्त, भारत ने हमेंशा भेदभावपूर्ण एवं आंशिक निरस्त्रीकरण सम्बन्धी सन्धियों का विरोध किया है। इस दिशा में 1970 की परमाणु अप्रसार सन्धि (एन.पी.टी.) पर भारत का विरोध सर्वविदित है। इस कमी को पूरा करने हेतु शीतयुद्धोत्तर युग में दिसम्बर 1993 में भारत ने अमेरिका के साथ संयुक्त रू‍प से 'व्यापक परमाणु निषेध सन्धि' (सी.टी.बी.टी.) का प्रस्ताव संयुक्त राष्ट्र में प्रस्तुत किया। परन्तु इस बीच ही परमाणु शस्त्रों से सम्पन्न राष्ट्रों ने 'परमाणु अप्रसार सन्धि' को भी 1995 में "असीमित" समय के लिए स्वीकृत करा लिया। जिसे बाद में विश्व के लगभग 180 राष्ट्रों की स्वीकृति मिल गई। इस घटना क्रम तथा सी.टी.बी.टी. के प्रारू‍प पर हुई बहस ने यह सिद्ध कर दिया कि यह नई सन्धि। (सी.टी.बी.टी.) भी एक व्यापक व सार्वभौमिक सन्धि होने के बजाय भारत के परमाणु कार्यक्रमों पर रोक लगाने तथा अन्ततः समाप्त करने हेतु बनाई जा रही है। सन्धि पर वार्ताओं के दौर में भारत की बातों को नकारते हुए इस सन्धि के प्रभावी होने के अनुच्छेद से भारत को स्पष्ट हो गया कि यह उसके विरूद्ध षड़यंत्र का स्वरूप है। अतः उसने इसे मानने से इन्कार करते हुए इससे अपने को अलग कर लिया। अन्ततः परमाणु शक्ति राष्ट्रों के बढ़ते दबाओं के कारण 11 व 13 मई 1998 को अपने परमाणु विकल्प का प्रयोग कर अपने को परमाणु शक्ति सम्पन्न घोषित कर दिया।

भारत की नीति में उपरोक्त परिवर्तन स्तही तौर पर निरस्त्रीकरण के प्रति विरोधाभास प्रतीत होता है। लेकिन यदि गहन अध्ययन करें तो पता चलता है कि अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश की बाध्यताओं के अनुरूप भारत को अपने 24

वर्षों का संयम (1974 से 1998) तोड़ना पड़ा। अभी भी परमाणु विस्फोटों के बाद भारत ने स्वयं पर अंकुश लगाने की बात की तथा यह एकतरफा कार्यवाई बिना किसी दबाव के होगी। भारत ने 'प्रथम प्रयोग न करने' के सिद्धान्त तथा गैर–परमाणु राष्ट्रों के विरूद्ध भी परमाणु हथियारों के प्रयोग की मनाही की है। भारत ने सिर्फ अपनी सुरक्षा हेतु इसे 'न्यूनतम निरोधक' क्षमता तक ही विकसित करने की बात की है। अतः भारत आज भी किसी भी व्यापक स्वरूप वाली समता पर आधारित सार्वभौमिक सन्धि पर हस्ताक्षर करने का पक्षधर है। इसलिए निरस्त्रीकरण के प्रति वचनबद्धता आज भी भारतीय विदेश नीति की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

16.6.6 नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की पक्षधर

भारत की विदेश नीति में राजनैतिक व सामरिक मुद्दों के साथ–साथ आर्थिक मुद्दों पर भी महत्त्वपूर्ण बल दिया। विश्व व्यवस्था के सन्दर्भ में 1950 व 1960 के दशकों में राजनैतिक मुद्दों को भारत ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन एवं संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से उठाया। परन्तु 1970 के दशक में ज्यादातर तीसरी दुनिया के देशों की आर्थिक स्थिति में सुधार एवं विकास हेतु 'नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था' (एन.आई.ई.ओ) की स्थापना पर बल दिया। भारत का इसके पीछे तर्क था कि जब तक इन विकासशील देशों की आर्थिक समस्याओं, जैसे– गरीबी, भूख, बीमारी, बेरोजगारी आदि, का निदान नहीं होता तब तक वहां आर्थिक समृद्धि नहीं आ सकती। इस आर्थिक क्षमता के विकास के बिना इन राष्ट्रों को विश्व में समानता, स्वतन्त्रता एवं सम्मान भी प्राप्त नहीं हो सकता। अतः भारत ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के मंचों के माध्यम से 1970 के दशक में इसे इस आन्दोलन की विषय सूची का भाग बनाया। 1973 के अल्जीरिया सम्मेंलन में विश्व शान्ति की समस्या को आर्थिक विकास व स्वतन्त्रता से जोड़ा गया। अन्ततः भारत व अन्य विकासशील देशों के प्रयास के बाद संयुक्त राष्ट्र ने 1 मई, 1974 को नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की घोषणा की। बाद में 1983 की 'नई दिल्ली घोषणा' में भी इसे अत्याधिक महत्त्व प्रदान किया गया।

शीतयुद्धोतर युग में यद्यपि भारत अब भूमंडलीकरण, उरारीकरण व मुक्त बाजार व्यवस्था अपना रहा है। परन्तु वह आज भी इन देशों के हितों की रक्षा करके इस बदलाव के दौर में इन राष्ट्रों में स्थाईत्व का पक्षधर बना हुआ है। सर्वप्रथम गैर वार्ताओं के माध्यम से 'विश्व व्यापार संगठन' के अन्तर्गत बहुपक्षीय आधार पर व्यापारिक शर्तों को विकासशील देशों हेतु न्यायोचित बनाने में प्रयासरत रहा है। द्वितीय, जी–77 व जी–15 देशों के समूह के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र में तथा दक्षिण–दक्षिण सहयोग को बढ़ाकर भारत इनके आर्थिक विकास हेतु सचेत है। तृतीय, बदलते हुए परिवेश में विकसित देशों के आर्थिक गुटों में बटने के कारण (यूरोपीय संघ, नाफता, एशिया–प्रशान्त सहयोग आदि) भारत तीसरी दुनिया या गुटनिरपेक्ष देशों को भी विभिन्न क्षेत्रीय आर्थिक संगठनों (हिन्दमहासागर टिम, साफ्ता आदि) के माध्यम से विकास करने का पक्षधर है। अतः इन प्रयासों के माध्यम तथा अपनी विदेश आर्थिक नीति के माध्यम से भारत आज भी विकासशील देशों तक बदलती हुई विश्व व्यवस्था के आर्थिक लाभों को पहुँचाना चाहता है। इसके अतिरिक्त, भारत इस नई स्थिति में इन देशों के विरूद्ध बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा या विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से सामाजिक धारा,बाल श्रम, मानवाधिकार आदि के नाम पर होने वाले किसी भी प्रकार के शोषण से रक्षा हेतु भी भरसक प्रयत्न कर रहा है।

16.6.7 संयुक्त राष्ट्र में निष्ठा

भारत ने अपनी नीति द्वारा हमेंशा न केवल संयुक्त राष्ट्र की स्थापना प्रक्रिया का समर्थन किया है बल्कि इसके द्वारा स्थापित मूल सिद्धान्तों व उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अपनी वचनबद्धता दोहराई है। नेहरू ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में बोलते हुए 3 नवम्बन 1948 को कहा था कि भारत न केवल पूर्ण रू॰ से चार्टर के सिद्धान्तों एवं उद्देश्यों हेतु वचनबद्ध है अपितु अपनी पूर्ण क्षमता के साथ उनको लागू करने की कोशिश भी करेगा। क्योंकि नेहरू का मानना था कि कुछ कमियों के बावजूद भी यह मूल कार्य को करने में सक्षम है और इसे यदि हमने आज स्थापित व मजबूत नहीं किया होता तब भी राष्ट्र इस प्रकार के संगठन की स्थापना हेतु अवश्य एकजुट हो जाते। लगभग इसी

प्रकार के उदगार नेहरू ने 5 मई 1950 को संयुक्त राष्ट्र नेटवर्क से न्यूयार्क में बोलते हुए प्रकट किए जब उन्होंने कहा कि संयुक्त राष्ट्र के मात्र अस्तित्व से ही हमने अपने आपको कई प्रकार के खतरों एवं संकटों से बचा लिया है। इसके साथ–साथ आज के विश्व में राष्ट्रों के मध्य शान्तिपूर्ण सहयोग की यह एक मात्र किरण है। सामान्य समय में ही नहीं बल्कि निराशा के दौर में भी भारत ने संयुक्त राष्ट्र से कभी भी अपना समर्थन वापिस नहीं लिया। कश्मीर जैसे मुद्दे का हल न होने पर भी भारत क संयुक्त राष्ट्र से आस्था में कभी कमी नहीं आई।

भारत द्वारा संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों में आस्था का प्रमुख कारण भारत का स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों व उद्देश्यों में काफी समानताएँ विद्यमान होना है। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रमुख सिद्धान्त, जैसे विश्व शान्ति, समस्याओं का शान्तिपूर्ण हल, रंगभेद की समाप्ति, सहनशीलता, अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक व आर्थिक सहयोग, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व आदि मूल रूप में संयुक्त राष्ट्र कार्यसूची का भी भाग है। भारतीय गुटनिरपेक्षता की नीति के प्रमुख मूल्य एवं आदर्श भी संयुक्त राष्ट्र के मूल्यों एवं आदर्शो से काफी हद तक मेंल खाते हैं।

इसीलिए शीतयुद्ध युगीन विश्व व्यवस्था के दौरान भारत ने संयुक्त राष्ट्र के सहयोग से उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, रंगभेद आदि की समस्याओं के निवारण के साथ–साथ विश्व शान्ति की स्थापना हेतु पारम्परिक एवं परमाणु निरस्त्रीकरण की समस्या को हल करवाने के काफी प्रयास किए। यद्यपि कुछ मुद्दों पर सफलता भी मिली, परन्तु सभी समस्याओं का समाधान नहीं हो सका। परन्तु भारत इस संगठन के माध्यम से उन्हें भी विश्व जनमत के सम्मुख प्रस्तुत कर सका। उत्तर–शीतयुद्ध काल में भी नई आर्थिक व्यवस्था के गठन, उत्तर–दक्षिण संवाद, आदि के आर्थिक मुद्दों पर भी भारत की प्रतिक्रियाएँ महत्त्वपूर्ण रही है। संयुक्त राष्ट्र में आजकल चर्चित बहुत सी महत्त्वपूर्ण चर्चाओं जैसे पर्यावरण सुधार, आंतकवाद पर प्रतिबन्ध, धरती को बचाने के कार्यक्रमों, ओजोन परत को क्षीण होने से रोकना, प्रदूषण को कम करना आदि के संदर्भों में भी भारत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। परन्तु संयुक्त राष्ट्र में पाँच महाशक्तियों द्वारा प्रयोग में की गई वीटो शक्ति के कारण भारत की भूमिका उतनी सशक्त नहीं हो पा रही है। दूसरे विश्व में आये आमूलचूक परिवर्तनों के मध्य नजर भी संयुक्त राष्ट्र का शक्ति विभाजन संतुलित प्रतीत नहीं होता। इसीलिए इस संस्था को और अधिक कारगर एवं उपयोगी बनाने हेतु भारत संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के प्रजातान्त्रिकरण हेतु भी काफी प्रयास कर रहा है। अतः विभिन्न बदलावों के बावजूद भारत की विदेश नीति में संयुक्त राष्ट्र में आस्था, इसमें सक्रिय योगदान व रूचि तथा इसके उत्तरदायित्वों को वहन करने की नीति निरन्तर रूप से जारी है।

16.6.8 विवादों को शान्तिपूर्वक हल करने का पक्षधर

भारत की विदेश नीति हमेंशा विश्व में घटित विवादों को शान्तिपूर्ण हल करने की पक्षधर रही है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा शान्ति स्थापित करने की कार्यवाही के सन्दर्भ में भारत हमेंशा अध्याय (VII) (दंडात्मक कार्यवाही/सामूहिक सुरक्षा के माध्यम से) के स्थान पर अध्याय (VI) (शान्तिपूर्ण तरीको से विवादों को सुलझाना) के अन्तर्गत कार्यवाही का पक्षधर रहा है।

भारत का मानना रहा है कि दण्डात्मक कार्यवाही से राज्यों के बीच मतभेद या मनमुटाव और बढ़ जाता है, जबकि शान्तिपूर्ण तरीकों के माध्यम से किया गया समाधान ज्यादा स्थाई सिद्ध होता है। इस सन्दर्भ में भारत सुरक्षा परिषद सुरक्षा एवं महासभा की शक्तियों में परिवर्तन का पक्षधर नहीं हैं अपितु इसका मानना है कि किसी भी प्रकार से परिषद् की शक्तियों को घटाकर महासभा की शक्तियों में परिवर्तन का पक्षधर नहीं है अपितु इसका मानना है कि किसी भी प्रकार से परिषद् की शक्तियों को घटाकर महासभा की शक्तियों में वृद्धि नहीं की जानी चाहिए। ऐसा करना अन्यायपूर्ण ही नहीं, अपितु राजनैतिक तौर पर भी गलत होगा। शायद इसी कारण से जब नवम्बर 1949 को 'शान्ति के लिए एकता प्रस्ताव' के माध्यम से महासभा की शक्तियों में वृद्धि करने की बात हुई तब भारत वोट डालने के समय अनुपस्थित रहा। बल्कि भारत का मानना है कि संयुक्त राष्ट्र की किसी भी कार्यवाही हो प्रभावी रूप से

करने हेतु पाँचों वीटो शक्तियों की सहमति आवश्यक है, उसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र की सैन्य कार्यवाही हेतु भी पाँचों वीटो शक्तियों की स्वीकृति का प्रावधान है।

शीतयुद्धोतर युग में भारत संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के प्रजातान्त्रिकरण हेतु भी शक्ति नहीं बल्कि आपसी सहमति को आधार बनाने का पक्षधर है। भारत की मांग बदले हुए विश्व के क्षितिज तथा समानांतर स्थिति के साथ–साथ नैतिकता एवं सर्वसम्मति पर आधारित है। भारत की यह मांग मूलतः नैतिकता, राजनैतिक, सुचारू विश्व व्यवस्था तथा प्रभाविकता पर आधारित है। अतः प्रारम्भिक वर्षों से लेकर शीतयुद्धोत्तर युग तक भारत का अटूट विश्वास रहा है कि विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करना ही स्थाई एवं कारगर तरीका है। इसी माध्यम से विश्व में दूरगामी शान्ति एवं स्थिरता बनी रह सकती है।

16.7 सारांश

अतः निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि भारत की विदेश नीति को उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर ही भारत न केवल अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति मात्र में व्यस्त है, अपितु वह विश्व शान्ति के प्रयासों को बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है। इन्ही विशेषताओं के द्वारा वह अपने द्विपक्षीय मतभेदों को हल करके परस्पर राष्ट्रों से अच्छे संबंधों के साथ–साथ क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग विकसित करने में प्रयासरत है। भारत की विदेश नीति के अन्तर्गत इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु हिंसा का कोई स्थान नहीं हैं, बल्कि वह चाहता है कि मतभेदों को भी शान्तिपूर्ण ढ़ग से हल करना ज्यादा श्रेयकर रहेगा। इसके साथ–साथ इसका है कि इस सन्दर्भ में राज्यों को हथियारों की होड़ को समाप्त करके निरस्त्रीकरण पर बल देना होगा। इस सम्पूर्ण विश्व व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने हेतु वह समानता व न्याय पर आधारित नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक विश्व व्यवस्था का पक्षधर है। परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जब इस बदले हुए विश्व में संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्था कार्य करे। शायद इसीलिए वर्तमान सन्दर्भ में ईराक के विरूद्ध कार्यवाही में भारत संयुक्त राष्ट्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका का पक्षधर है। इसके साथ–साथ भारत संयुक्त राष्ट्र के प्रजातान्त्रिकरण की मांग भी करता रहा है। अतः भारत की विदेश नीति गुटनिरपेक्षता, पंचशील, शान्तिपूर्ण। सह–अस्तित्व के साथ–साथ विश्व शान्ति, सहयोग, निरस्त्रीकरण आदि को बढ़ावा देने की नीति है।

16.8 प्रश्नावली

1. विदेश नीति से आपका क्या अभिप्राय है? भारत के विदेश नीति के ऐतिहासिक विकास का वर्णन कीजिए।
2. भारत की विदेश नीति के उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
3. भारत की विदेश नीति की प्रमुख विशेषताएं बताइए।
4. भारत की विदेश नीति में शीतयुद्धोत्तर युग में आये बदलाओं का विवरण दीजिए।
5. भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
6. भारत द्वारा निःशस्त्रीकरण हेतु किए गए प्रयासों की चर्चा कीजिए।
7. भारत की विदेश नीति में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापना हेतु योगदान का वर्णन कीजिए।

16.9 पाठन सामग्री

1. आर.एस. यादव, सम्पूर्ण इण्डियाज फॉरेन पॉलिसी इन दॉ 2000 ए.डी (नई दिल्ली, 1993)
2. आर.एस. यादव एवं सुरेश ढ़ांडा, सम्पा०, इण्डियाज फॉरेन पालिसी : कंटम्प्रेरी ट्रेंडज, (नई दिल्ली, 2009)
3. आर.एस. यादव, भारत की विदेश नीति (दिल्ली, पियरसन, 2013)

4. आर.एस. यादव, इण्डियन फॉरेन पालिसी (दिल्ली, पियरसन, 2020)
5. डेविड एम.मलोने एवं अन्य, सम्पा०, दॉ ऑक्सफोर्ड हेंड बुक ऑफ इण्डियन फॉरेन पालिसी (नई दिल्ली, 2015)
6. राजीव सिकरी, चैलेंजीज एण्ड स्ट्रेटेजी : रिचिंकिंग इण्डियाज फॉरेन पालिसी (नई दिल्ली, सेज, 2013)
7. हर्ष वी.पंत, इण्डियन फॉरेन पालिसी : एन ओवरव्यू, (मानयेस्टरयूनि प्रैस, 2016)
8. सुमित गागुली, इण्डियन फॉरेन पालिसी, (ओक्सफोर्ड यूनि०, प्रैस, 2015)
9. हर्ष वी.पंत, सम्पा०, न्यू डारेकसन इन इण्डियाज फॉरेन पालिसी : न्यौरी एण्ड प्रैक्सिस (केम्ब्रीज यूनि० प्रैस, 2018)
10. कान्ति बाजपेयी एण्ड हर्ष वी.पंत, सम्पा०, इण्डियान फॉरेन पालिसी : ए रीडर, (आम्सफोर्ड यूनि० प्रैस, 2013)
11. सुमित गांगुली, सम्पा०, ऐगोजिज दॉ वर्ल्ड, इण्डियन फॉरेन पालिसी सिंसा 1947, (आक्सफोर्ड यूनि० प्रैस, 2016)
12. डेविड एम. मलोने, जज दॉ ऐलिफेंट डांसर कम्टम्प्रेरी इण्डियन फॉरेन पालिसी (ओक्सफोर्ड यूनि० प्रैस, 2014)

अध्याय–17

भारत के पड़ोसियों से संबंध

अध्याय का ढ़ांचा

17.1 प्रस्तावना

17.1.1 अध्याय के उद्देश्य

17.2 पडोस नीति का स्वरूप

17.3 पडोसियों से द्विपक्षीय सम्बन्ध

17.3.1 भारत–चीन संबंध

17.3.1.1 संबंधों का स्वर्णिम युग (1949–1959)

17.3.1.2 संघर्ष का काल (1959–1962)

17.3.1.3 संबंध रहितता का काल (1962–1976)

17.3.1.4 वार्तालाप का काल (1976–1988)

17.3.1.5 सहयोगात्मक संबंधों का युग, (1988–1998)

17.3.1.6 नवीन साझेदारी की ओर अग्रसर, (1999–2020)

17.3.2 भारत–पाकिस्तान संबंध

17.3.2.1 विभाजन व प्रारम्भिक अलगाव, (1947–1954)

17.3.2.2 सघंर्षपूर्ण संबंध, (1955–1971)

17.3.2.3 तनाव शैथिल्प का दौर, (1972–1979)

17.3.2.4 उतार–चढ़ाव का दौर, (1980–1998)

17.3.2.5 कारगिल युद्ध से पुनः संबंध स्थापना तक (1000–2020)

17.3.3 भारत–श्रीलंका संबंध

17.3.3.1 मतभेदपूर्ण संबंध (1948–1956)

17.3.3.2 मित्रतापूर्ण संबंध (1956–1976)

17.3.3.3 तनावपूर्ण संबंध (1977–1994)

17.3.3.4 मधुर सम्बन्धों की पुनः वापसी (1994–2003)

17.3.4 भारत–बांग्लादेश संबंध

17.3.4.1 प्रमोदकाल (1971–1975)

17.3.4.2 उतार–चढ़ाव का दौर, (1975–1995)

17.3.4.3 नई शुरूआत, (1996–2020)

17.3.5 भारत–नेपाल संबंध

17.3.5.1 मित्रतापूर्ण प्रारम्भ (1947–1955)

17.3.5.2 परिवर्तन का युग (1955–1962)

17.3.5.3 नये समीकरणों का युग (1963–1971)

17.3.5.4 मतभेदों के बावजूद सामान्य संबंध (1972–1979)

17.3.5.5 उतार–चढ़ाव परन्तु सुखद संबंध (1980–2003)

17.4 सारांश

17.5 प्रश्नावली

17.6 पाठन सामग्री

17.1 प्रस्तावना

भारत की विदेश नीति में पडोसी देशों के प्रति रूझान अत्याधिक रूप में दिया गया है। चाहे पंचशील की नीति हो, चाहे गुजरात सिद्धान्त हो तथा चाहे मोदी सरकार का पडोसी प्रथम की नीति हो सभी विदेश नीति निर्माताओं ने इस पर अत्याधिक बल दिया है। शायद इसका प्रमुख कारण इन पड़ौसियों से हमारे विरासत में मिले विवादास्पद मुद्दे हो या बाद की परिस्थितियों से उत्पन्न स्थिति हो, भारत अपने पडोसियों को नहीं भूला सकता। इसके अतिरिक्त, पडोस में होने वाली नकारात्मक घटनाओं का अधिप्लाव प्रभाव भारत की विदेश नीति को प्रभावित करता है। इसके साथ–साथ भारत द्वारा हमेशा से विश्व स्तीरय भूमिका निभाने के प्रयास में भी क्षेत्रीय स्तर पर शान्ति व स्थायित्व आवश्यक है। अतः भारत किसी भी प्रकार की विदेश नीति का अनुसरण करें, परन्तु अपने पडोसियों को महत्त्व देगा तथा उनकी अनदेखी नहीं कर सकता।

17.1.1 अध्याय के उद्देश्य

इस अध्याय का मूल उद्देश्य भारत की पडोसी नीति का स्पष्ट वर्णन करना है। इसमें मूल रूप से पडोस नीति के स्वरूप व बड़े व छोटे पड़ोसियों के प्रति भारत के दृष्टिकोण को स्पष्ट करना है। इसके अतिरिक्त इन सभी पड़ोसियों के साथ 1947 से 2020 तक के द्विपक्षीय संबंधो के प्रमुख बिन्दुओं की चर्चा करना हैं इन सभी आयामों के अध्ययन से भारत की पड़ोसियों के प्रति विदेश नीति का स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत करना है।

17.2 पड़ोसी नीति का स्वरूप

विदेश नीति के निर्धारण में प्रत्येक राज्य को अपने पड़ोसी राष्ट्रों पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। कभी–कभी ऐसे अवसर भी आते है जब देश की सुरक्षा को पड़ोसी राज्यों की राजनीति प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। भारत के पांच से भी अधिक दशकों के इतिहास के सन्दर्भ में यह बात विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए भारत की विदेश नीति का केन्द्र बिन्दु अपने पड़ोसी राष्ट्रों के साथ सामरिक रूप से सुरक्षित, राजनीतिक रूप से स्थिर एवं शान्तिपूर्ण तथा आर्थिक रूप से सहयोगात्मक संबंध स्थापित करना रहा है। अतः भारत सक्रिय रूप से निरन्तर अपने पड़ोसी

राष्ट्रों के साथ संबंधों की प्रक्रिया में लगा रहता है।

भारत की विभिन्न पड़ोसियों से अलग–अलग संबंधों को अध्ययन करने से पूर्व यह अनिवार्य है कि भारत की पड़ोस नीति के विभिन्न चरणों का आंकलन करें। यद्यपि मुख्य रूप से भारत की विदेश नीति के प्रमुख आयामों में से एक है सभी पड़ोसियों से मधुर सम्बन्ध, फिर भी अलग–अलग नेतृत्व के समय उन बिन्दुओं पर बल देने की विभिन्नता के कारण थोड़ा बहुत अन्तर जरूर दिखाई पड़ता हे। पिछले 56 वर्षों में (1947–2003) मुख्य रूप से भारत की पड़ोस नीति के पांच प्रमुख चरण माने जा सकते हैं :–

(1) प्रथम चरण नेहरू युग (1947–1964) को मान सकते है जिसमें भारत विश्व स्तर पर अधिक प्रभावी होने की चाह में पड़ोसियों पर कम ध्यान दे सका। यद्यपि इस सन्दर्भ में पंचशील के सिद्धान्त का प्रतिपादन भी किया गया, तथापि चीन से ही युद्ध का सामना भी करना पड़ा। इस संकट के समय में पड़ोसियों द्वारा कोई प्रभावी पहल न करने व समर्थन न देने के कारण भी भारत को पड़ोसियों के प्रति उदासीनता की नीति को छोड़ना पड़ा।

(2) द्वितीय चरण इन्दिरा गांधी युग (1966–1984) को माना जा सकता है जो नेहरू के आदर्शवाद के स्थान पर यर्थाथवादी नीतियों का काल था। इस समय में विश्व सन्दर्भ में भारत की स्थिति को मजबूत करने के साथ–साथ दक्षिण एशिया में भी इसकी स्थिति को सुदृढ़ किया गया। भारत–सोवियत मैत्री सन्धि व हिन्दमहासागर शान्ति क्षेत्र घोषित होनेके साथ–साथ क्षेत्रीय सन्दर्भ में भारत–पाक युद्ध में विजय के साथ–साथ परमाणु परीक्षण, एकीकृत प्रक्षेपास्त्र प्रणाली, रक्षा क्षेत्र में विकास आदि के द्वारा रक्षा में आत्मनिर्भर बनाने की कोशिश भी की।

(3) तृतीय चरण (1985–1996) तक का काल तदर्थता का युग माना जा सकता है। विभिन्न सरकारों के आने, पड़ोसियों से विभिन्न मुद्दों पर मनमुटाव, आन्तरिक राजनैतिक अस्थिरता आदि के कारण इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जा सका। यद्यपि दक्षेस की स्थापना से क्षेत्रीय सहयोग बढ़ाने का प्रयास अवश्य किया गया, परन्तु यह प्रयोग अधिक सफल नहीं हो सका।

(4) चतुर्थ चरण (1997–1998) बहुत संक्षिप्त परन्तु महत्त्वपूर्ण समय गुजरात सिद्धान्त के स्थापित होने को मान सकते है। इस समय सिद्धान्त के आधार पर एक तरफ रियायतों की घोषणा के आधार पर छोटे पड़ोसी राज्यों से जुड़े सभी विवादों को हल करके सहयोग विकसित करने के प्रयास किये गए। इसके साथ–साथ दक्षिण एशिया में उप–समूहों के माध्यम से पड़ोसियों के साथ सहयोग विस्तार पर बल दिया गया।

(5) पंचम चरण (1998–2014) राष्ट्रीय गठबन्धन सरकार द्वारा वाजपेयी के जनता कार्यकाल में विदेश मंत्री के समय (1977–1999) की नीतियों एवं गुजरात सिद्धान्त को मिश्रण के अपनाते हुए सभी पड़ोसियों से अच्छे संबंधों, का प्रयास किया गया। इसके अन्तर्गत छोटे पड़ोसियों के साथ–साथ भारत के दोनों बड़े पड़ोसियों चीन व पाकिस्तान के साथ संबंधों को सुधारने के प्रयास किए गए। चीन के साथ मई 1998 के बाद आये तनाव को परस्पर राजनेताओं की यात्राओं के माध्यमों से दूर करने के प्रयास किए गए। भारत की ओर से जसवन्त सिंह (1995–2001) के.आर. नारायणन (2000) तथा अटलबिहारी वाजपेयी (2003) ने चीन की यात्राएं की तो, चीन की ओर से ली पेंग (1999) झू. रोंगजी (2002) व कई अन्य प्रमुख नेताओं ने भारत की यात्राएं की। पाकिस्तान के साथ भी प्रयास तो किए गए लेकिन ज्यादातर विफल रहे। लाहौर यात्रा (1999) के बाद कारगिल युद्ध (1999) हो गया। 13 दिसम्बर 2001 को भारत संसद पर आंतकवादी हमलों के बाद ऑपरेशन पराक्रम (2001–2002) की विफलता के बाद आगरा शिखर वार्ता (2002) भी असफल रही। वर्तमान में श्रीनगर पहल (2003) के क्या परिणाम होंगे कहना अभी जल्दबाजी होगी।

1. अन्तिम चरण (2014–2020)

अतः पड़ोसियों से संबंधों का सिलसिला उतार–चढ़ाव वाला रहा है। इसके कुछ वस्तुनिष्ठ कारण उत्तरदायी रहे है जैसे – क्षेत्रीय भूगोल, राजनैतिक विरासत, आकारों में अन्तर, संसाधनों की विभिन्नता, जातीय, नदियों एवं अनिश्चित सीमाएँ आदि। कुछ व्यक्तिपरक कारण भी जिम्मेंदार रहे है जैसे–विभिन्न विदेश नीतियां, नेतृत्व, राजनैतिक अस्थिरता, परस्पर अविश्वास, सकारात्मक दृष्टिकोणों का अभाव, आन्तरिक प्रजातान्त्रिकरण का अभाव सैन्य शासकों का वर्चस्व, कट्टरवाद आदि। परन्तु इन दोनों कारकों का प्रभाव अलग–अलग पड़ोसियों व विभिन्न समयों में पृथक–पृथक रूप में देखने को मिलता है। अतः इनकों समझने हेतु भारत के सभी पड़ोसी राज्यों के साथ संबंधों का विस्तृत वर्णन अनिवार्य हैं, जो इस प्रकार से है।

17.3 पडोसियों से द्वि–पक्षीय सम्बन्ध

17.3.1 भारत–चीन संबंध

भारत व चीन के संबंधों की शुरूआत मधुर संबंधों के साथ हुई। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का नेतृत्व चीन महत्व से अनभिज्ञ नहीं था। चीन में आये क्रांतिकारी बदलाव का आंकलन भी भारत ने सही परिप्रेक्ष्य में किया, अतः दोनों के मध्य अच्छे संबंधों की शुरूआत हुई। यही नहीं, अक्तूबर 1949 को साम्यवादी चीन की स्थापना के बाद 30 दिसम्बर 1949 को उसे मान्यता प्रदान करने वाला, बर्मा (म्यांमार) के बाद, भारत दूसरा गैर–साम्यवादी देश था। यद्यपिइ स पृष्ठभूमि में दोनों के मध्य दूरगामी मधुर संबंधों से इन्कार नहीं किया जा सकता, तथापि यह भी सत्य है कि दोनों के मध्य 1962 में युद्ध हुआ। अतः एक ओर हिन्दी–चीनी भाई–भाई का दौर रहा वहीं दूसरी और 14 वर्षों तक 'संबंध रहितता' का काल भी रहा। इन सभी उतार–चढ़ावों से युक्त संबंधों के अध्ययन हेतु दोनों देशों के रिश्तों का विस्तृत आकलन आवश्यक है, जो निम्न प्रकार से है –

17.3.1.1 संबंधों का स्वर्णिम युग (1949–1959)

दोनों देशों के बीच संबंधों का प्रथम दशक मैत्रीपूर्ण एवं सहयोगात्मक रहा है। इनकी मित्रता के स्वरूप ही प्रगाढ़ता के कारण इसे 'प्रमोद युग' या 'स्वर्णिम युग' की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार के संबंधों हेतु कई प्रमुख कारक उत्तरदायी रहे हैं – प्रथम, भारत ने एक प्रजातांत्रिक देश होते हुए भी एक साम्यवादी देश को मान्यता ही नहीं प्रदान की अपितु सभी अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर इसकी मान्यता एवं सदस्यों की अन्य शक्तियों के समक्ष वकालत भी की। द्वितीय, भारत ने कई नीतियों के माध्यम से चीनी दृष्टिकोण एवं स्थितियाँ का समर्थन किया। उदाहरणस्वरूप 1950 में कोरिया संकट के समय चीन को आक्रान्ता घोषित करने के प्रस्ताव का विरोध करके, 1951 में सॉनफ्रांसिस्को सम्मेंलन में जापान के साथ शांति संधि घोषणा पर हस्ताक्षर न करके तथा फोरमासा टापू को चीन में विलय करने का समर्थन करके भारत ने चीन के पक्षों को सदैव मजबूती प्रदान की। तृतीय, 29 अप्रैल 1954 को दोनों देशों द्वारा व्यापारिक समझौते की प्रस्तावना में शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धान्त पर 'पंचशील' के नियमों का उल्लेख कर अपने संबंधों हेतु एक मजबूत ढ़ांचा तैयार कर लिया। शायद इसी कारणवश इस समय 'हिन्दी–चीनी भाई–भाई' का नारा बहुत सशक्त रू‍प से उभर कर सामने आया। चतुर्थ, दोनों देशों द्वारा विश्व शांति एवं कई प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर समान दृष्टिकोण अपनाना। मुख्य रूप से यह बात दोनों द्वारा साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद व रंग भेद की नीतियों का विरोध करने तथा एशिया व अफ्रीकी देशों के मध्य सहयोग विकसित करने के रूप में अति स्पष्ट रूप में देखने को मिली। अन्ततः दोनों देशों के राजनैतिक नेतृत्व द्वारा परस्पर देशों की यात्राओं के कारण इनके बीच में आपसी समझ एवं सहयोग की प्रक्रिया आगे बढ़ी।

परन्तु उपरोक्त सहयोगात्मक प्रवृत्तियों से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि इस युग में दोनों देशों के बीच कोई मतभेद विद्यमान नहीं थे। सहयोग के इन प्रबल तथ्यों के होते हुए भी कुछ विषयों पर दोनों के बीच

मतभेद थे जो निम्न कारण को लेकर थे – तिब्बत को लेकर दोनों की बीच मतभेद बने हुए थे। भारत जहां इसे चीन का 'स्वायत क्षेत्र' मानता था वहीं चीन इसे अपना 'अभिन्न' अंग मानता रहा है। तिब्बत से भागने पर दलाई लामा को भी नई दिल्ली द्वारा शरण प्रदान करने पर दोनों के मतभेद स्पष्ट दिखाई देते थे। द्वितीय, चीन द्वारा अपने भौगोलिक नक्शों में भारत के लगभग 50,000 वर्ग मील के क्षेत्र को चीन का भाग दिखाने पर भी दोनों देशों के मध्य मतभेद बने रहे। अन्ततः बाण्डुंग (इंडोनेशिया) में हुए अफ्रीकी व एशियाई देशों के सम्मेंलन में भी दोनों के परस्पर विरोधी दृष्टिकोण खुल कर सामने प्रकट हुए।

अतः मूल रूप से यह काल दोनों देशों के मध्य स्वर्णिम युग था, परन्तु भारत में चीन के प्रति कुछ सन्देह की स्थिति भी कुछ हद तक थी। परन्तु यह उतनी उजागर नहीं थी कि इसे मतभेदों का नाम दिया जा सके। भारत द्वारा चीन के प्रति कठोर दृष्टिकोण न अपनाने के पीछे शायद दो प्रमुख कारण रहे होंगे–पहला, भारत की समकालीन आर्थिक एवं सामरिक कमजोरी, तथा दूसरा नेहरू व कृष्णामेंनन का चीन की नीतियों के संबंध में गलत आंकलन।

17.3.1.2 संघर्ष का काल (1959–1962)

1959 में तिब्बत के विद्रोह व उसके परिणास्वरूप दलाई लामा द्वारा भारत में शरण लेने के बाद भारत व चीन के संबंध टकराव की ओर बढ़ने लगे तो अन्ततः 1962 के चीन द्वारा किए आक्रमण के बाद एक अत्यन्त जटिल व्यवस्था में परिवर्तित हो गए। इसलिए यह युग बढ़ते हुए विवादों (विशेषकर सीमा विवाद) व युद्ध का युग रहा है। चीन ने तिब्बत विद्रोह में भारत की भूमिका को साम्राज्यवादी ताकतों से मिलीभगत एवं भारत की विस्तारवादी नीतियों का परिणाम बताया। परन्तु भारत ने चीन के इन दोनों आरोपों का खण्डन किया।

तिब्बत के बाद चीन ने भारत की सीमाओं में घुसपैठ प्रारम्भ कर दी। इस समय चीन ने सीमाओं को लेकर भारत पर तरह–तरह के आरोप लगाने शुरू कर दिए। इसकी विस्तृत जानकारी नेहरू द्वारा 14 दिसम्बर 1958 से 12 फरवरी 1960 तक चीन सरकार को लिखे गए पत्र व्यवहार से मिलती है। कुल मिलाकर 1958–59 में चीन ने भारत से लगी सीमाओं के पश्चिमी, मध्य व पूर्वी तीनों भागों पर कुछ न कुछ क्षेत्रों को अपनी ओर मिलाने की कार्यवाही शुरू कर दी। पश्चिमी क्षेत्र में आकसाई चीन में 1955 में चीन ने कुछ सड़कों का निर्माण कर लिया तथा 1958 में भारत के लद्दाख क्षेत्र में घुसपैठ करके कुछ क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया। मध्य क्षेत्र में बड़ाहोती क्षेत्र को लेकर दोनों के मध्य विवाद रहा। भारत का क्षेत्र होने पर भी चीन बार–बार अपना नियंत्रण जताने लगा रहा। पूर्वी क्षेत्र में चीन ने भारत के लॉगजु क्षेत्र पर अपना कब्जा स्थापित कर लिया तथा मैकमोहन रेखा भी दोनों के मध्य विवाद का मुद्दा बनी रही।

लेकिन 20 अक्टूबर 1962 को चीन द्वारा भारत पर युद्ध करने से दोनों के बीच अत्यधिक दूरियां बन गई। चीन ने इस युद्ध में भारत के एक बड़े भू–भाग पर कब्जा कर लिया। यद्यपि चीन ने 21 नवम्बर 1962 को एकतरफा युद्ध विराम की घोषणा कर दी, परन्तु दोनों द्विपक्षीय संबंधों को गहरा धक्का लगा। इस युद्ध के बाद दोनों देशों के संबंध बिल्कुल समाप्त हो गए। भारत के एक बड़े भू–भाग पर चीन के कब्जे के कारण, सीमा विवाद दोनों के मध्य एक प्रमुख मुद्दा बन गया।

17.3.1.3 संबंध रहितता का काल (1962–1976)

चीन युद्ध के बाद अगले 14वर्षों का समय दोनों देशों के बीच संबंध रहितता का युग रहा। यद्यपि दोनों देशों ने राजनयिक संबंध तो समाप्त नहीं किए, परन्तु अपने–अपने राजदूतों को अवश्य वापिस बुला लिया तथा दूतावासों को बन्द कर दिया। कई प्रमुख कारणों से दोनों के मध्य दूरियाँ कम होने के स्थान पर और बढ़ती गई। प्रथम, अब दोनों के मध्य सीमा विवाद सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा बन गया इसीलिए इसके समाधान के बिना अच्छे संबंधों की कल्पना

करना कठिन था। कोलम्बों प्रस्तावों के आधार पर इस विवाद को इसलिए नहीं सुलझाया जा सका क्योंकि चीन ने कुछ शर्तें लगा दी थी। 1963 में दोनों सरकारों के मध्य हुए पत्र व्यवहारों का भी कोई संतोषजनक परिणाम नहीं निकला। चीन इस मुद्दे को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में ले जाने हेतु भी सहमत नहीं हुआ। द्वितीय, 1963 में चीन व पाकिस्तान के मध्य क्षेत्रों के संबंध में हुए आदान प्रदान ने इनके तनावों को और बढ़ा दिया। 1963 में पाकिस्तान–चीन समझौते के अन्तर्गत पाकिस्तान ने 'पाक अधिकृत काश्मीर' का 5180 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र चीन को देने से भारत ने गहरा रोष प्रकट किया। तृतीय, 1964 में चीन द्वारा परमाणु विस्फोट करने तथा 1965 में भारत–पाक युद्ध में पाकिस्तान का समर्थन करने से दोनों के संबंध और अधिक तनावपूर्ण हो गए। चतुर्थ, 1970 के दशक में अमेरिका–पाक–चीन त्रिकोणीय गठबंधन से दोनों के रिश्ते और खराब हो गए। क्योंकि यह गठबंधन पूर्वी सोवियत संघ के साथ–साथ भारत की घेराबन्दी करने हेतु भी विकसित किया गया था।

परन्तु 1971 में भारत–पाक युद्ध में भारत की जीत ने स्पष्ट रूप से दक्षिण एशिया में भारत की स्थिति मजबूत करते हुए इसे एक क्षेत्रीय शक्ति के रूप में स्थापित किया। इसी काल में अमेरिका द्वारा चीन को मान्यता प्रदान करने से इसका संयुक्त राष्ट्र का स्थाई सदस्यता का मार्ग प्रशस्त हुआ। अतः दोनों देशों की स्थितियाँ मजबूत होने के कारण शायद दोनों द्वारा परस्पर रिश्तों में सुधार के प्रयास होने लगे। लेकिन 1974 में भारत द्वारा पोखरन–1 परमाणु विस्फोट करने तथा 1975 में सिक्किम को भारत का राज्य बना लेने से फिर दोनों के मध्य थोड़ा सा व्यवधान उत्पन्न हो गया। परन्तु यह स्थिति अधिक देर तक नहीं बनी रह सकी। दोनों देशों की विभिन्न बाध्यताओं एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में बदलावों के कारण 1976 में दोनों ने अपने मध्य दीवार को हटाकर पुनः राजनयिकों के आदान–प्रदान की प्रक्रिया शुरू की। इस दृष्टि से अप्रैल 1976 में भारत ने एक लम्बे अन्तराल के बाद के आर. नारायणन को चीन में अपना राजदूत नियुक्त किया।

17.3.1.4 वार्तालाप का काल (1976–1988)

इस काल को दोनों देशों के मध्य 'नई शुरूआत' का युग कहा जा सकता है। इस युग को संबंधों के सामान्यीकरण के प्रयास हेतु अग्रसर होना भी माना जा सकता है। राजदूतों की परस्पर नियुक्ति से यह बात तो निश्चित ही थी कि दोनों राष्ट्र संबंधों में सुधार के इच्छुक हैं। इसके अतिरिक्त दोनों देशों में आये आन्तरिक बदलावों तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के परिणामस्वरूप भी यह प्रक्रिया और मजबूत हुई।

आन्तरिक रूप से जहाँ 1976 में माओं–से–तुंग की मृत्यु के बाद नवीन नेतृत्व ने उदारीकरण की नीतियों को अपनाते हुए न केवल चार प्रमुख क्षेत्रों में आधुनिकरण (रक्षा, कृषि, उद्योग तथा विज्ञान व प्रौद्योगिकी) पर बल दिया, वहीं चीन की 'सांस्कृतिक क्रांति' की व्यवस्था को ही समाप्त कर दिया। इसके परिणामस्वरूप चीन ने विश्व राजनीति में अपने अलग–अलग स्वरूप को छोड़कर विश्व के विभिन्न देशों से अति आधुनिकतम एवं उच्च दर्जे की प्रौद्योगिकी ग्रहण करना शुरू कर दिया। इस प्रक्रिया में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग विकसित करने के साथ–साथ, पड़ोसियों से संबंध सुधारों पर भी बल दिया।

भारत ने भी अपनी आन्तरिक स्थिति को देखते हुए पड़ोसियों से संबंध सुधारने प्रारम्भ कर दिए जिसमें जनता दल के शासन काल में (1977–79) 'पड़ोसियों' के प्रति मधुर संबंध विकसित करने की नीतियों ने और मजबूती प्रदान की। इस सन्दर्भ में वाजपेयी ने विदेश मंत्री के तौर पर चीन की यात्रा भी की, परन्तु वह सफल न हो सकी। इसके बाद भी दोनों देशों के मध्य संबंध सुधार एवं सहयोग बढ़ाने का सिलसिला जारी रहा।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर, जहां एक ओर चीन को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता के साथ–साथ सुरक्षा परिषद् की स्थाई सदस्यता भी मिल गई, वहीं भारत भी 1971 में अपनी जीत एवं 1974के पोखरन–1 परीक्षण के बाद अधिक आश्वस्त दिखाई दिया। इसके अतिरिक्त, चीन व पूर्व सोवियत संघ के बीच सुधरते संबंधों ने भी दोनों के मध्य एक

महत्त्वपूर्ण रूकावट वाले कारक को समाप्त कर दिया। इसके उपरान्त, 1979 में सोवियत संघ के अफगानिस्तान में सैन्य हस्ताक्षेप को लेकर भारत–सोवियत संघ के बीच उभरते मतभेदों ने भी इसे चीन के निकट लाने में मद्द की। इसके अलावा, चीन–अमेरिका के संबंधों में आई कटुता के कारण चीन भी भारत की ओर अधिक आकृष्ट हुआ।

इन कारणों से दोनों देशों ने अपनी चुप्पी तोड़ी और वार्ताओं का दौर प्रारम्भ हुआ। 1981 से 1987 तक दोनों देशों के प्रतिनिधियों के बीच वार्ताओं के आठ दौर सम्पूर्ण हुए। इन वार्ताओं में दोनों ओर से स्पष्टीकरण देने के अलावा विभिन्न मुद्दों पर परस्पर सुझाव भी दिए। इसके साथ–साथ सीमाओं के सन्दर्भ में दोनों के बीच काफी जानकारियों का आदान–प्रदान हुआ तथा इससे दोनों के मध्य विश्वसनीयता बढ़ाने वाले कदमों (सी.बी.एम) का विकास हुआ। इन्हीं वार्ताओं एवं विश्वसनीयता के कदमों ने ऐसा ठोस आधार बनाया जिस पर आगे चलकर दोनों के मध्य सहयोग एवं सद्भावना की मंजिल खड़ी हो सकी।

उपरोक्त तथ्यों से यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता कि यह युग पूर्ण मतभेद रहित था। इसके विपरीत इस काल में दो प्रमुख विषयों को लेकर भारत व चीन के मध्य गहन मतभेद भी थे। सर्वप्रथम विवाद का विषय बाडडोंग में एमडोरंग चू घाटी में चीन द्वारा भारतीय सीमा में घुसपैठ का मामला था। जून 1986 में चीन ने इस विवादास्पद क्षेत्र में घुसपैठ कर कुछ सैन्य चाँकियां भी स्थित कर ली। सूत्रों से पता चला है कि चीन ने वहां हेलीपैड भी बना लिया है। भारत के विरोध जताने पर भी चीन का रवैया नहीं बदला। उम्मीद की जाती है कि जब सम्पूर्ण सीमा विवाद सुलझेगा ताभी इस समस्या पर भी शायद कोई आम सहमति बन जाए। दूसरा मुद्दा अरूणाचल प्रदेश को लेकर हुए मतभेद का है। जब भारत सरकार ने 20 फरवरी 1987 को अरूणाचल प्रदेश को भारतीय संघ के 24 वे राज्य के रूप में घोषणा की तब चीन ने कड़ी आपत्ति उठाई यद्यपि बाद में भारत द्वारा आपत्ति उठाई जाने के कारण चीन ने इस मामले को अधिक तूल नहीं दिया।

परन्तु छोटे–छोटे मतभेदों के बावजूद यह काल दोनों देशों के भविष्य के संबंधों में प्रगाढ़ता विकसित करने हेतु अति महत्त्वपूर्ण रहा। एक तो इस युग में दोनों देशों के मध्य संबंध रहितता का दौर समाप्त हो गया जो बहुत सार्थक कार्य रहा। दूसरा इन वार्ताओं के दौर से आपकी गलतफहमियां दूर होने के साथ–साथ दोनों के बीच परस्पर विश्वास बढ़ाने वाले कारकों में वृद्धि हुई। दोनों के बीच उत्पन्न इसी सद्भावना ने सहयोग की नींव रखी जिस पर आज दोनों के सहयोगी एवं मैत्रीपूर्ण संबंधों का भवन खड़ा है। अतः इस युग ने आने वाले सहयोगात्मक संबंधों हेतु पहली सीढ़ी का कार्य किया, जिससे दोनों के परस्पर मधुर संबंधों का मार्ग प्रशस्त हुआ।

17.3.1.5 सहयोगात्मक संबंधों का युग, 1988–1998

यह एक दशक का समय दोनों देशों के संबंधों में बदलाव का अति महत्त्वपूर्ण व प्रभावशाली काल माना जा सकता है। इस काल में दोनों देशों के संबंधों में सुधार विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रम, आन्तरिक परिस्थितियों एवं दोनों के परस्पर दृष्टिकोणों में आए परिवर्तनों के कारण हुआ। इनके मुख्य कारण निम्नलिखित थे – प्रथम, अमेरिका की विदेश नीति में बदलाव से दोनों ही देशों ने अमेरिका को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया। अमेरिका ने मानवाधिकार के नाम पर जहां एक ओर चीन की तियनामन चौंक (1989) की घटना की आलोचनाएँ की, वहीं दूसरी ओर कश्मीर के मुद्दे पर भी मानवाधिकारों के उल्लंघन की दुहाई दी। द्वितीय, 1991 में पूर्व सोवियत संघ के विघटन स्वरूप उत्पन्न स्थिति के कारण भी दोनों देशों के बीच नजदीकियां और बढ़ी। इस विघटन के परिणामस्वरूप जहाँ एक और चीन के मुख्य प्रतिद्वन्दी की समाप्ति हो गई, वहीं भारत का एक विश्वसनीय मित्र नहीं रहा। इसके साथ–साथ भारत–सोवियत मैत्री एवं चीन–सोवियत विवादस्वरूप चीन–भारत के मध्य रूकावट पैदा करने वाले कारक की भी समाप्ति हो गई। तृतीय, शीतयुद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में आये बदलाव स्वरूप विश्व में उभरती हुई एक ध्रुवीय व्यवस्था बनने की स्थिति के कारण दोनों राष्ट्र बहुध्रुवीय व्यवस्था बनाने हेतु सहयोगात्मक प्रयास के रूप में एकजुट होते प्रतीत हुए। इसके अतिरिक्त, दोनों ही देश वर्तमान शोषणकारी व्यवस्था के स्थान पर एक

न्यायोचित विश्व व्यवस्था बनाने हेतु एकमत प्रतीत हुए। चतुर्थ, विकास व आधुनिकरण की बढ़ती हुई बाध्यताओं तथा भूमण्डलीकरण के दौर में घटते हुए रक्षा खर्चों के कारण भी दोनों देशों के लिए परस्पर मधुर संबंध बनाना अनिवार्य था। पंचम, चीन द्वार भारत के अपने पड़ोसियों से संबंधों के बारे में आया बदलाव भी इस हेतु काफी हद तक उत्तरदायी रहा है। अब चीन चाहता है कि भारत अपने पड़ोसियों से सभी मुद्दे द्विपक्षीय आधार पर सुलझायें। चीन इस सन्दर्भ में किसी भी प्रकार की नकारात्मक टिप्पणी से बचने लगा है। षष्ट, शीतयुद्धोत्तर युग में राजनीति के स्थान पर आर्थिक मुद्दों के महत्त्वपूर्ण होने के कारण दोनों देशों के बीच नवीन आर्थिक समीकरणों का उदय होना अनिवार्य बन पड़ा। अन्ततः नई परिवर्तित विश्व व्यवस्था में संयुक्त राष्ट्र की चुनौतियों, सार्थकता एवं भूमिका को लेकर भी दोनों के बीच आम सहमति बनती नजर आने लगी है।

उपरोक्त कारणों से दोनों देशों में बढ़ती नजदीकियों की परिचायक दोनों देशों के राजनैतिक नेतृत्व द्वारा की गई यात्रायें रही। इन यात्राओं में से राजीव गांधी (1988) व पी.वी. नरसिम्हा राव (1993) की चीन यात्राएँ तथा प्रधानमंत्री ली पेंग (1991) व राष्ट्रपति जिंयाग जमीन (1996) की भारत यात्राएँ ऐतिहासिक रही। राजीव गांधी की चीन यात्रा के दौरान पहली बार दोनों देश इस बात पर सहमत हुए कि वे सीमा विवाद को अलग रखकर अन्य मुद्दों पर सहयोग बढ़ाने के पक्षधर हैं। सीमा विवाद सुलझाने हेतु दोनों 'संयुक्त कार्यकारी दल' का गठन किया गया जिनकी बैठक हर छः माह बाद वैकल्पिक रूप से दोनों देशों की राजधानियों में हुआ करेंगी। इस ऐतिहासिक सहमति के अतिरिक्त, दोनों देशों के मध्य विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी, नागरिक उड्डयन तथा सांस्कृतिक सहयोग के समझौतों पर भी हस्ताक्षर हुए।

1993 में भारतीय प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव की यात्रा को 'एक मील के पत्थर' की संज्ञा दी गई। इस यात्रा के माध्यम से राजीव गांधी द्वारा की गई पहल को स्थायित्व प्रदान करने के कदम के रूप में आंका गया। राजीव गांधी ने जहां सीमा विवाद को अन्य सहयोगात्मक कदमों से अलग रखने का प्रयास किया, वहीं इस यात्रा के द्वारा सीमा विवाद सुलझाने हेतु महत्त्वपूर्ण समझौते हुए जिनका उद्देश्य 'परस्पर एवं समान' सुरक्षा प्रदान करना था। इस यात्रा के दौरान 'नियंत्रण रेखा संबंधित' एक 9 सूत्री समझौता हुआ जिससे सीमा रेखा के पास शांति स्थापित करने की प्रक्रिया को बल मिला। सीमा पर शांति स्थापना की वैद्यता को स्वीकार करते हुए दोनों देश 'नियंत्रण रेखा' को स्वीकार करते हुए दोनों देश 'नियंत्रण रेखा' को ही वर्तमान सीमा रेखा मानने को तदर्थ रूप से तैयार हो गए। जब तक यह स्थाई रेखा नहीं बन जाती दोनों ही इसके पास शांति बनाएँ रखेंगे। चीन की ओर से यात्रा करते हुए प्रधानमंत्री ली पेंग ने दोनों देशों के मध्य विश्वसनीयता को बढ़ाने वाले कदमों को बढ़ावा दिया। दोनों देशों द्वारा 'पंचशील' के सिद्धान्तों में एक बार फिर आस्था व्यक्त करते हुए नई विश्व व्यवस्था के निर्णय में समान भागीदारी, निरस्त्रीकरण, उत्तर–दक्षिण विवाद में कमी, संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के पालन आदि विषयों पर सहयोग हेतु सहमति प्रकट की। तीन महत्त्वपूर्ण व्यापारिक समझौतों पर हस्ताक्षर करने के साथ–साथ, व्यापार विभिन्नीकरण तथा सीधे व्यापार पर बल दिया गया।

जियांग जमीन की भारत यात्रा राजनैतिक एवं आर्थिक रूप से अति महत्त्वपूर्ण थी। राजनैतिक रूप से माओं के बाद जमीन भारत आने वाले ऐसे नेता थे जो राष्ट्रपति के साथ–साथ साम्यवादी दल के महासचिव एवं सेना नियंत्रण आयोग के अध्यक्ष भी थे। इन्होंने चार महत्त्वपूर्ण समझौतों पर हस्ताक्षर किए जिनमें से आपसी विश्वास बढ़ाने हेतु नियंत्रण रेखा संबंधित समझौता सामरिक रूप से अति महत्त्वपूर्ण हैं। व्यापारिक दृष्टि से भी पूंजीनिवेश पर नियंत्रण, जहाजरानी तथा व्यापार विभिन्नीकरण के संदर्भ में भी परस्पर सहमति हुई।

अतः इस एक दशक के काल में सामारिक रूप से भारत–चीन सीमा विवाद के बारे में 'संयुक्त कार्यदल' के गठन के साथ–साथ विभिन्न 'विश्वसनीयता बढ़ाने वाले कदमों' की स्थापना हुई। इन्हीं के कारण न केवल विवादास्पद सीमा रेखा पर शांति बनी रही, अपितु दोनों देशों में मैत्रीपूर्ण संबंधों की रूपरेखा भी तैयार हुई दूसरे

दोनों देशों के राजनेताओं की परस्पर यात्राओं द्वारा संस्थागत संबंधों का भी विकास हुआ। दोनों देशों के सैन्य अधिकारियों, समुद्री जहाजों के आवागमन, समाचार एजेंसियों में सहयोग, शिक्षा तथा प्रोद्यौगिकी से जुड़े विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग की सम्भावनाएँ बढ़ी। सांस्कृतिक रूप से भी एक दूसरे के यहां चीन महोत्सव (1992) तथा भारत महोत्सव (1994) के आयोजनों से जन साधारण में एक दूसरे के देशों के बारे मे जानने की उत्सुकता बढ़ी। अन्ततः इन मधुर सम्बन्धों का प्रभाव आर्थिक संबंधों के विकास पर पड़ा जिसकी झलक भारत–चीन के मध्य बढ़ते द्विपक्षीय व्यापार से लगाई जा सकती है। इसका विवरण तालिका –1 में दिया गया है–

तालिका –1

भारत–चीन द्विपक्षीय व्यापार, 1991–98

(अमेरिकी मिलियन डॉलर)

वर्ष	भारत से निर्यात	भारत में आयात	कुल व्यापार	व्यापार संतुलन
1991	120.33	144.48	264.81	+24.15
1992	180.99	158.14	339.39	+22.50
1993	416.57	259.16	675.73	+157.41
1994	322.00	573.00	894.00	–251.00
1995	398.00	765.00	1,162.00	–367.00
1996	719.16	689.54	1,408.70	+29.62
1997	897.26	933.06	1,830.32	–35.80
1998	905.70	1,016.59	1,912.29	–110.89

स्त्रोत : आर.एस.यादव, 'भारत की विदेश नीति : एक विश्लेषण, इलाहाबाद, किताब महल, 2003 लेकिन संबंधों में इन सुधारों को भारत द्वारा 11 व 13 मई 1998 को किए गए परमाणु परीक्षणें के बाद बड़ा धक्का लगा। इन परमाणु परीक्षणों के बाद चीन ने भारत द्वारा इन्हें स्थगित करने तथा व्यापक परमाणु निषेध संधि पर हस्ताक्षर करने पर बल दिया। परन्तु इस समय भारत के दृष्टिकोण से ही दोनों के मध्य ज्यादा दूरियाँ विकसित हुई। सर्वप्रथम, भारत के तत्कालीन रक्षामंत्री जार्ज फर्नांडीज ने चीन को भारत का दुश्मन नम्बर एक बताया। द्वितीय, भारत के प्रधानमंत्री द्वारा भी अमेरिका के राष्ट्रपति क्लिंटन को लिखे पत्र में इन परीक्षणों का औचित्य चीन से उत्पन्न सुरक्षा खतरों को ही ठहराया।

अन्ततः इन परीक्षणों के स्पष्टीकरण हेतु भारत ने अपने विशेष दूतों को सभी परमाणु सम्पन्न राष्ट्रों की राजधानियों में भेजा, परन्तु ऐसा कोई दूत चीन नहीं भेजा। यद्यपि इन कारणों से दोनों के मध्य दूरियाँ, बन गई तथा 'संयुक्त कार्य दल' की कार्यवाही भी स्थगित कर दी गई, तथापि चीन की प्रतिक्रिया उतनी तीव्र नहीं रही। कई क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश की बाध्यताओं के कारण चीन भारत के साथ अधिक मतभेद नहीं बढ़ा सकता था। अतः मई 1998 के बाद रिश्तों में 'अस्थाई तनाव अवश्य आ गया था जो अधिक समय तक नहीं बना रह सका।

17.3.1.6 नवीन साझेदारी की ओर अग्रसर, (1999–2020)

विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय बाध्यताओं एवं द्विपक्षीय बाध्यताओं के कारण दोनों के मध्य दूरियाँ नहीं रह सकी। दोनों देशों के नेताओं ने इस समस्या के समाधान हेतु परस्पर सद्भावना यात्राओं द्वारा इसे दूर करने के प्रयास किए। भारत की ओर से जसवन्त सिंह (1999 व 2002) आर.के. नारायणन (2002) जार्ज फर्नाडीज (2003) व अटल बिहारी वाजपेयी

(जून 2003) ने चीन की यात्राएँ की। दूसरी ओर से भी तांग जिक्सुआन (1999), ली पेंग (2001) तथा झू रोंगजी (2002) ने भारत की यात्राएँ की। इन यात्राओं के माध्यम से दोनों देशों के बीच 'संयुक्त कार्यवाही दल' के माध्यम से सामारिक वार्ताओं का दौर प्रारम्भ हो गया, सीमा रेखा के मध्य भाग के नक्शों का आदान–प्रदान हुआ, राजनयिक संबंधों की स्वर्ण जयंती मनाना, तथा पंचशील के सिद्धान्तों में दोबारा आस्था व्यक्त की गई। इन सभी यात्राओं में जून 2003 की अटल बिहारी वाजपेयी की यात्रा अति महत्त्वपूर्ण रही। इस यात्रा के माध्यम से दोनों के बीच 'नई साझेदारी' विकसित करने हेतु 23 जून को "संबंधों के सिद्धान्त एवं व्यापक सहयोग" के दस्तावेज के अतिरिक्त अन्य सहयोग के समझौतों पर भी हस्ताक्षर हुए। इन समझौतों में एक समझौते के अन्तर्गत दोनों देशों के बीच नाथुला दर्रे के रास्ते सिक्किम से होते हुए एक नये व्यापारिक मार्ग को खोलने पर भी सहमति हुई। भारत द्वारा व्यापक दस्तावेज में ही तिब्बत को चीन का एक स्वायत क्षेत्र (चीन का अभिन्न अंग) मान लिया गया, तथा इन व्यापारिक समझौते से चीन द्वारा सिक्किम को भारत का अंग मानने की अप्रत्यक्ष कार्यवाही अवश्य शुरू हो गई। शायद निकट भविष्य में चीन भी सिक्किम पर भारत की प्रभुसत्ता को स्वीकार कर लेगा। एक अन्य महत्त्वपूर्ण समझौते के अन्तर्गत सीमा विवाद के समाधान में तीव्रता लाने हेतु दोनों ने अपने–अपने विशेष प्रतिनिधियों को नियुक्त करने का फैसला किया जो इस समस्या को राजनैतिक दृष्टिकोण से हल करने का प्रयास करेंगे। भारत की ओर से यह उत्तरदायित्व रक्षा सलाहकार ब्रिजेश मिश्र को सौंपा गया है जबकि चीन की ओर से वरिष्ठ उप–विदेश मंत्री दाई बिंगाओं यह जिम्मेंदारी निभायेगें। अतः इन यात्राओं ने, विशेषकर वाजपेयी की चीन यात्रा ने, इनके संबंधों को सुधारते हुए इनके मध्य एक 'सहयोगी साझेदारी' बढ़ाने का कार्य किया।

इन वर्षों में दोनों के संबंधों में आर्थिक, सामरिक एवं राजनैतिक मधुरता का विकास हुआ है जो निम्न स्थितियों से स्पष्ट परिलक्षित होता हैं–

आर्थिक रूप से, भारत व चीन के बीच व्यापार में बढ़ोतरी निरंतर जारी रही है। भारत व चीन के बीच कुल व्यापार जहां 1999–2000 में 27971 लाख डॉलर था वही 2000–01 में बढ़कर 23075, 2001–02 में 2923 तथा 2002–03 में 38667 लाख डॉलर हो गया। इन व्यापारिक संबंधों को तीव्रता प्रदान करने हेतु दोनों देशों ने मंत्रीस्तरीय 'संयुक्त आर्थिक समूह' (जे.ई.जी.) के महत्त्व को स्वीकारते हुए इसकी सातवीं बैठक एक वर्ष के अन्दर–अपने करने का फैसला किया है। इसके अतिरिक्त, व्यापार एवं अन्य आर्थिक सहयोग बढ़ाने हेतु दोनों देशों ने अपने–अपने अधिकारियों एवं अर्थशास्त्रियों का एक 'संयुक्त अध्ययन दल' (जे.एस.जी.) बनाने का फैसला भी किया है। इसके अतिरिक्त, दोनों देश अपने द्विपक्षीय मुद्दों एवं विकासशील देशों के हितों की पूर्ति हेतु 'विश्व व्यापार संगठन' की कार्यवाही में भी सहयोग पर सहमत हो गए हैं। अन्ततः प्रधानमंत्री की इस यात्रा के दौरान वाजपेयी ने भारत व चीन के संचार प्रोद्यौगिकी के क्षेत्र में व्यापक सहयोग की सम्भावनाओं पर बल दिया। उनका मानना था कि यदि दोनों देश सहयोग करें तो दुनिया के संचार प्रोद्यौगिकी के एक बड़े हिस्से पर कब्जा कर सकते हैं क्योंकि इस क्षेत्र में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। सामरिक रूप से यद्यपि परमाणु परीक्षणों पर रोक एवं भारत द्वारा सी.टी.बी.टी. पर हस्ताक्षर न करने के मामलों पर दोनों में अभी मतभेद बने हुए हैं, लेकिन फिर भी कई सामरिक विषयों पर सहयोग भी जारी हैं। उदाहरणस्वरूप, दोनों ही देश परमाणु हथियारों के पहले प्रयोग न करने के पक्षधर हैं। दोनों ही देश परमाणु प्रसार के हक में भी नहीं हैं। दोनों ही देश अपने सीमा विवाद को भी शीघ्र सुलझाना चाहते हैं। इसके लिए शीघ्र ही दोनों अपने पूर्वी व पश्चिमी क्षेत्र के नक्शों का आदान–प्रदान करेंगे। वाजपेयी की वर्तमान चीन यात्रा के समय इस सन्दर्भ में विशेष प्रतिनिधियों, की नियुक्ति भी उनकी इस दिशा में सकारात्मक सोच का परिचायक हैं। दोनों ही देश अब परस्पर एक दूसरे से असुरक्षित महसूस करने के स्थान पर सहयोगी बनने का प्रयास कर रहे हैं। दोनों के मध्य सामान्य सुरक्षा सहयोग के साथ–साथ सीमाओं के रास्ते व्यापारिक गतिविधियों के बढ़ने से भी जन मानस के बीच समझ तथा राज्यों के बीच विश्वसनीयता बढ़ेगी।

राजनैतिक रूप से, भी दोनों के परस्पर सम्बन्ध सही दिशा में प्रयासरत हैं। सर्वप्रथम संयुक्त राष्ट्र की भूमिका के संदर्भ में दोनों ही एकमत हैं। दोनों देश संयुक्त राष्ट्र की भूमिका को सशक्त करने तथा सुरक्षा परिषद् के प्रजातांत्रिकरण के पक्षधर हैं। इसके साथ–साथ दोनों ही निरस्त्रीकरण व अन्तरिक्ष के शान्तिपूर्ण प्रयोग हेतु संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से बहुपक्षीय वार्ताओं पर बल देते हैं। द्वितीय, यद्यपि स्पष्ट रूप से दोनों देशों ने स्वीकार नहीं किया हैं परन्तु दोनों ही भारत रूस चीन त्रिपक्षीय सहयोग बढ़ाने के पक्षधर है। पिछले कुछ वर्षों से भारत–चीन, भारत–रूस तथा रूस व चीन संबंधों में निरंतर सुधार इस ओर इशारा करते हैं। रूस के राष्ट्रपति पुतिन की पिछली यात्रा चीन के रास्ते भारत आने से भी इन बातों को और बल मिलता है। तृतीय, दोनों देश शीतयुद्धोत्तर युग में बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था के पक्षधर हैं। सोवियत विघटन के बाद अमेरिका के बढ़ते वर्चस्व के प्रति दोनों ही आशंकित है। विशेषकर अफगानिस्तान व ईराक के घटनाक्रम के बाद दोनों के बीच शायद यह आशंका और अधिक मजबूत हो गई है। अन्ततः दोनों देश आज अन्तर्राष्ट्रीय आंतकवाद के खतरों से अवगत ही नहीं हैं बल्कि इसे विश्वशांति व सुरक्षा हेतु बड़े खतरे के रूप में देखते हैं शायद इसीलिए आतंकवाद पर नियंत्रण हेतु दोनों देश एकमत है तथा परस्पर सहयोग द्वारा इस स्थिति से निपटना चाहते हैं।

परन्तु उपरोक्त वर्णन का अर्थ यह नहीं है कि उत्तर–पोखरन 2 काल में दोनों के बीच गतिरोध बिल्कुल समाप्त हो गये हैं। दोनों देश आज भी कई मुद्दों पर पूर्णतः सहमत नहीं हैं। आर्थिक रूप से आज भी दोनों के बीच बैकिंग व अन्य संस्थागत सुविधाओं का अभाव है। गुणवत्ता के बारे में पारदर्शिता, कारोबार से पहले शपथ पत्र हासिल करना, बैंकों के चीन में कारोबार करने, बाजार संबंधित दस्तावेजो का अंग्रेजी में न होना आदि अभी भी कई अड़चने हैं जो भारतीय व्यापार को चीन में प्रसारित करने के मार्ग में रूकावट है। इसके अतिरिक्त आज भी व्यापार संतुलन चीन के पक्ष में बना हुआ है जिसे सुधारना अति अनिवार्य है। इसी प्रकार सामरिक क्षेत्र में आज भी परमाणु व प्रेक्षपास्त्रों के विकास एवं चीन द्वारा पाकिस्तान को इस प्रकार के शस्त्रों की आपूर्ति कराने के मुद्दों पर विभेद जारी हैं। राजनैतिक रूप से भी दोनों के मध्य आज भी विश्वसनीयता बनाने वाले कारक पूर्ण रूप से संतोषजनक नहीं हैं।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि पिछले 56 वर्षों के अंतराल में भारत–चीन संबंध उतार चढ़ाव वाले रहे है। यद्यपि पिछले 15 वर्षों से निरन्तर इनमें सुधार जारी है तथा काफी हद तक ये संबंध सहयोगात्मक बन रहे हैं। प्रधानमंत्री वाजपेयी की जून 2003 की यात्रा भी इस नवीन साझेदारी के रास्ते में एक महत्त्वपूर्ण पहल रही हैं। परन्तु दूरगामी शान्ति व सहयोग हेतु निम्न मुद्दों का स्थाई हल आवश्यक है। प्रथम दोनों देशों को शीघ्र–अति शीघ्र अपेन सीमा विवाद को हल करना होगा। द्वितीय, चीन को स्पष्ट रूप से सिक्किम को भारत को अंग मानना पड़ेगा। तृतीय, चीन द्वारा पाकिस्तान को दिए जाने वाले प्रक्षेपास्त्रों एवं परमाणु सहयोग गतिविधियों को रोकना होगा। चतुर्थ, म्यांमार के माध्यम से हथियार देने या इस देश से हिन्द महासागर में अपनी सैन्य क्षमता का विकास करने पर भी चीन को रोकना होगा ताकि भारत अपने आप को असुरक्षित महसूस नहीं कर सके। अन्ततः आर्थिक सहयोग हेतु व्यापार के ढ़ाचों को सुदृढ़ करते हुए चीन के पक्ष में हुए व्यापार संतुलन को ठीक करना होगा। दोनों देशों के मध्य व्यापार मात्रा को बढ़ाना होगा तथा पूंजीनिवेश एवं संयुक्त उद्यमों के विकास के मार्ग प्रशस्त करने होगें इन्हीं उपायों के माध्यम से दोनों देशों के मध्य दूरगामी मधुर संबंधों की स्थापना की जा सकती है। यद्यपि दोनों राष्ट्र इस ओर प्रयासरत हैं परन्तु इन दोनों के मध्य विभिन्न क्षेत्रों में हुए विकास की गति पर ही दोनों के भावी संबंधों की दिशा तय होगी। यह सत्य है कि वर्तमान में दोनों ही देश इस ओर साकारात्मक पहल कर रहे हैं।

17.3.2 भारत–पाकिस्तान संबंध

दो पड़ोसी देशों के मध्य विवादास्पद संबंधों की लम्बी श्रृंखला वाले उदाहरणों में भारत–पाकिस्तान संबंध अति प्रमुख हैं। दोनों के मध्य ऐतिहासिक समानता, सांस्कृतिक एकरूपता, भौगोलिक सामीप्य, आर्थिक अन्तः निर्भरता आदि के

बावजूद मित्रता के बजाय दूर के पड़ोसियों वाले सम्बन्ध बने हुए है। 1947 से आज तक इनके संबंध स्पर्धा, संघर्ष एवं युद्धों के दायरे से बाहर नहीं निकल पाए है। अध्ययन की सुविधा हेतु इनके संबंधों में आए उतार–चढ़ाव का विश्लेषण पाँच निम्न चरणों में किया जा सकता है।

17.3.2.1 विभाजन व प्रारम्भिक अलगाव, (1947–54)

भारत व पाकिस्तान स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में विभाजन, नरसंहार एवं वैमनस्य के दौर से गुजर कर आये। इसीलिए दोनों के संबंधों की शुरूआत मित्रता की बजाय द्वेषपूर्ण संबंधों से हुई। विभाजन से जुड़े कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों ने इनके रिश्तों को जटिल एवं अविश्वसनीयता पूर्ण बना दिया। प्रथम विभाजन के बाद पंजाब व बंगाल की सीमाओं का निर्धारण, सेनाओं का बटवारा, असैनिक सेवाओं का विभाजन, तथा सरकारी सम्पदा एवं देनदारी की समस्या ने इनके रिश्तों में कड़वाहट पैदा कर दी। द्वितीय विभाजन के दौरान दोनों ओर से भारी मात्रा में मुसलमानों तथा हिन्दू व सिखों का पलायन हुआ तथा जो एक दूसरे के यहाँ रह गये वे वहां अल्पसंख्यक बन गये। इन अल्पसंख्यकों एवं शरणार्थियों को समस्याओं ने भी दोनों में दूरियाँ पैदा की। तृतीय सिन्धु एवं उसकी सहायक नदियों के पानी के बटवारे को लेकर भी दोनों देशों के बीच विवाद रहा। लगभग 12 वर्षों के विवाद के बाद दोनों देशों की दूरदर्शित एवं विश्वबैंक की भूमिका के बाद 1960 में यह समस्या हल कर ली गई। चतुर्थ विभाजन में पूर्व में बंगाल व पश्चिम में पंजाब के विभाजन के साथ–साथ कई क्षेत्रों के निर्धारण की समस्या अभी भी बनी रही। यद्यपि रेडक्लिफ कमीशन द्वारा यह मामला काफी हद तक हल कर लिया गया, लेकिन सीमाओं को रेखांकित करके सीमाबन्दी करना इतना सरल नहीं था अतः यह समस्या भी दोनों के मध्य तनाव का कारण रही। पंचम दोनों देशों में पलायन के बाद विस्थपितों द्वारा छोड़ी गई सम्पति के आंकलन, वितरण, हर्जाने आदि को लेकर भी मतभेद बने रहे। अन्ततः दोनों के बीच सबसे महत्त्वपूर्ण विवाद कश्मीर को लेकर हुआ। प्रारम्भ में कश्मीर राज्य ने दोनों देशों से अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाए रखा। लेकिन जब पाकिस्तान की सेना ने कबाईलों के भेष में कश्मीर पर आक्रमण कर दिया त बवह 26 अक्तूबर 1947 को सम्पन्न सन्धि के अन्तर्गत भारत का हिस्सा बन गया। परन्तु तब तक पाकिस्तान आधे कश्मीर पर कब्जा कर चुका था जिसे 'पाक अधिकृत कश्मीर' कहते हैं। तब से लेकर आज तक कश्मीर पर अपने आधिपत्य को लेकर दोनों देशों के बीच तनाव नहीं अपितु युद्ध भी हो चुके हैं। अतः विभाजन के उपरान्त उत्पन्न समस्याओं से यह स्पष्ट है कि दोनों देशों के संबंधों की शुरूआत सुखद नहीं रही। यद्यपि कश्मीर के विवाद को छोड़कर कुछ समस्याओं का समाधान तुरन्त एवं कुछ समस्याओं का समाधान कुछ वर्षों बाद हो गया, तथापि दोनों देशों के मध्य आपसी अविश्वास एवं असहयोग बना रहा। इसके परिणामस्वरूप दोनों देशों ने परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों का समर्थन ही नहीं किया अपितु विरोधाभास पूर्ण विदेश नीतियों का अनुसरण किया। आन्तरिक परिस्थितियों में भी सकारात्मक परिवर्तन की बजाय नकारात्मक पहलुओं का ही वर्चस्व बना रहा। अतः देशों के मध्य दूरियाँ बढ़ती गई तथा सहयोग की सम्भावनाओं का अभाव रहा।

17.3.2.2 संघर्षपूर्ण संबंध, (1955–1971)

यह काल दोनों देशों के संबंधों में अति नाजुक बल्कि संघर्ष की चरम सीमा वाला युग रहा। इस दौरान न केवल तनावपूर्ण सम्बन्ध रहे, अपितु द्वन्द्वात्मक स्वरूप भी दो युद्धों (1965 व 1971) के रूप में उभर कर आया। इन दो युद्धों के कई निकटवर्ती एवं दूरगामी परिणाम सामने आये। इस काल में इन संघर्षपूर्ण रिश्तों के लिए कई प्रमुख कारण उत्तरदायी रहे हैं। प्रथम 1954 व 1955 में पाकिस्तान द्वारा अमेरिका समर्थित सीएटो व सैंटो गठबन्धनों में शामिल होने से भारत की विदेश नीति की विपरीत धारा में भाग ले लिया। जहां भारत इन सैन्य गुटों से दूरियाँ बनाने का पक्षधर था, वहीं पाकिस्तान उन गठबन्धनों का हिस्सा बन गया। द्वितीय पाकिस्तान चीन के मध्य मित्रतापूर्ण संबंधों का भी नकारात्मक प्रभाव पड़ा क्योंकि भारत व चीन के बीच 1962 के युद्ध के बाद संबंध विच्छेद हो गए थे। इसके अतिरिक्त 1963 में चीन के साथ हुए सीमा समझौते के अन्तर्गत पाकिस्तान ने 'पाक अधिकृत

कश्मीर' की 5180 वर्ग किलोमीटर भूमि चीन को हस्तांतरित कर देने से दोनों के संबंधों पर प्रतिकूल असर पड़ा। तृतीय 1965 में पाकिस्तान द्वारा भारत के विरूद्ध युद्ध की कार्यवाही ने दोनों के संबंधों को और खराब कर दिया। यद्यपि पूर्व सोवियत संघ की मध्यस्थता के द्वारा 10 जनवरी 1966 के ताशकन्द समझौते से शान्ति स्थापित हो गई परन्तु इस मन मुटाव से आपसी अविश्वास और अधिक बढ़ गया। चतुर्थ 1970–71 में पाकिस्तान का आन्तरिक घटनाक्रम चुनाव मार्शल लॉ लागू होना पूर्वी पाकिस्तान से भारी मात्रा में शरणार्थियों का भारत के विरूद्ध पाक–चीन–अमेरिका त्रिगुट बनना आदि ऐसे कारण रहे जिन्होंने दोनों देशों के तनावों को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। अन्ततः 3 दिसम्बर 1971 को पाकिस्तान ने भारत पर सीधे युद्ध की कार्यवाही कर दी। इस 14 दिन चले युद्ध में भारत की निर्णायक जीत हुई तथा पाकिस्तान दो राज्यों – पाकिस्तान व बांग्लादेश – के रूप में बट गया। अन्तर्राष्ट्रीय समीकरणों में भी काफी बदलाव देखने को मिले। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान की आन्तरिक स्थिति व दक्षिण एशिया में भारत की स्थिति में भी बदलाव आया।

इस प्रकार दोनों देशों के मध्य संबंधों का यह चरण संघर्षात्मक होने के साथ–साथ अति जटिल रहा है। इस दौर में दोनों के बीच कटुता व वैमनस्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया था। दोनों युद्ध द्विपक्षीय, क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टियों से कई प्रकार से महत्त्वपूर्ण रहे लेकिन इनके माध्यमों से भी दोनों के मध्य स्थाई शान्ति या सहयोग को किसी भी प्रकार से बढ़ावा नहीं मिला। कश्मीर जैसी अडिग समस्या के समाधान हेतु भी कोई पहल नहीं की जा सकी। 1971 के भारत–पाकिस्तान युद्ध ने तो दोनों के मध्य सभी समीकरणों को ध्वस्त कर दिया। परन्तु इसने पाकिस्तान की आन्तरिक स्थिति में प्रमुख बदलाव लाने के साथ–साथ दक्षिण एशिया का भौगोलिक मानचित्र ही बदल कर रख दिया। इन्हीं बदली हुई स्थिति के कारण दक्षिण एशिया में भारत एक शक्ति के रूप में उभर कर आया। इन सबके परिणामस्वरूप नए द्विपक्षीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समीकरणों ने जन्म दिया, जिसने दोनों के संबंधों में नई पहल करने की परिस्थितियों को जन्म दिया।

17.3.2.3 तनाव शैथिल्य का दौर, (1972–1979)

1971 के युद्ध के बाद थोड़े से समय तक दोनों देशों ने सकारात्मक रिश्तों की पहल की जिसके परिणामस्वरूप दोनों के मध्य तनाव शैथिल्य का दौर आया। शायद यही एक संक्षिप्त काल था जिस दौरान दोनों देश कम–से–कम शत्रुता वाले संबंध नहीं रखते थे। बदली हुई राष्ट्रीय, क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों ने दोनों देशों को वास्तविक धरातल पर आकर अपने संबंधों का आंकलन करने पर बाध्य किया। इसके परिणामस्वरूप निम्नलिखित कदमों के कारण दोनों के बीच नजदीकियाँ बनी। प्रथम 3 जुलाई 1972 में दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों 'शिमला समझौते' पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते के अन्तर्गत दोनों देशों ने आपसी विवादों को द्वि–पक्षीय आधार पर हल करने के सिद्धान्त पर सहमति व्यक्त की। द्वितीय इसके बाद बांग्लादेश को भी विश्वास में लेकर युद्धबन्दियोंकी समास्या का समाधान किया गया। तृतीय 22 फरवरी 1974 को पाकिस्तान द्वारा बांग्लादेश को औपचारिक मान्यता देने के बाद तीनों राष्ट्रों के रिश्तों में सुधार आया। चतुर्थ 1974 व 1975 में भारत व पाकिस्तान के बीच कुछ व्यापारिक तथा परस्पर आदान प्रदान के समझौतों पर हस्ताक्षर करने से मधुर संबंध बने। पंचम 1976 में फिर दोनों देशों के मध्य कुछ व्यापारिक एवं गैर व्यापारिक समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। षष्ट 14 मई 1976 को हुए समझौते के अन्तर्गत पुनः राजदूतों का आदान–प्रदान प्रारम्भ हुआ।

उपरोक्त कारणों से दोनों देशों के मध्य दूरियां कम हुई तथा मित्रतापूर्ण सम्बन्धों की शुरूआत हुई। लेकिन 1977 में दोनों देशों में आन्तरिक परिवर्तन हुए। पाकिस्तान में 5 जुलाई 1977 में लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित भूट्टो सरकार का तख्ता पलट कर जरनल जियाउलहक ने सत्ता सम्भाल ली। परन्तु इस घटना का दोनों देशों के द्वितीय–पक्षीय मुद्दों पर नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा। इसका प्रमुख कारण यह हुआ कि भारत में भी लम्बे अन्तराल के बाद कांग्रेस दल को सत्ता से बाहर कर जनता पार्टी की सरकार बनी। इस सरकार की विदेश नीति के एजेन्डा

में 'पड़ोसियों से मधुर संबंध' बनाना वरीयता का विषय था। अतः पाकिस्तान से भी संबंधों को सुधारना चाहते थे। इसीलिए शायद जियाउलहक द्वारा भुटटों को मृत्युदंड देने को भी वहां का आन्तरिक मामला बताकर प्रतिक्रिया व्यक्त की। इसके अतिरिक्त, इस युग में दोनों देशों ने 'सलाल बिजली परियोजना' पर सहमति व्यक्त करते हुए संबंधों को और मधुर बना दिया। इस प्रकार 1972–79 का युग दोनों के बीच तनाव रहित एवं मित्रता हेतु प्रयासरत संबंधों का युग माना जा सकता है।

17.3.2.4 उतार–चढ़ाव का दौर, (1980–98)

यह काल पुनः संघर्ष काल के रूप में उभर कर आया, जिसमें एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा के साथ–साथ दोनों ही देश परमाणु सम्पन्न राष्ट्रों की श्रेणी में आ खड़े हुए। इस प्रकार इस काल में अनेक प्रकार के घटनाक्रम हुए जिससे दोनों देशों में तनाव व शान्ति का मिश्रित दौर चला।

ठनके बीच तनाव बढ़ने के ये प्रमुख कारण थे – प्रथम, 1979 में सोवियत संघ द्वारा अफगानिस्तान में सैन्य हस्तक्षेप कर शीतयुद्ध को इन दोनों राष्ट्रों के करीब ला दिया। परन्तु इसका लाभ पाकिस्तान को मिला क्योंकि पाकिस्तान इस समय अमेरिका की रणनीति वाला अग्रिम राष्ट्र बन गया। इसी कारण इसे अमेरिका से भरपूर आर्थिक सहायता एवं हथियार प्राप्त हुए जिससे भारत के विरूद्ध इसकी स्थिति मजबूत बन गई। दूसरी ओर इस घटनाक्रम से भारत व सोवियत संघ के बीच रिश्तों में दरारें पड़ गई क्योंकि भारत इस समस्या को राजनैतिक दृष्टि से हल करने का पक्षधर था, न कि सैन्य साधनों द्वारा। द्वितीय इस काल में पाकिस्तान ने न केवल पंजाब व कश्मीर में आंतकवादियों को सहायता प्रदान की, अपितु अपने क्षेत्र में आंतकवादी प्रशिक्षण शिवरों का आयोजन भी किया। यद्यपि सिंध व बलुचिस्तान में हो रहे अलगाववादियों के आन्दोलनों को सहायता प्रदान करने के भी आरोप पाकिस्तान ने भारत पर लगाये, जो प्रमाणिक नहीं थे। इस प्रकार के आरोपों–प्रत्यारोपों के कारण दोनों के मध्य दूरियाँ अवश्य उत्पन्न हो गई। तृतीय, अफगानिस्तान की घटना के पश्चात दोनों देशों के मध्य हथियारों की होड़ को भी बढ़ावा मिला। एक और अमेरिका ने पाकिस्तान को 1979 में 400 मिलियन डॉलर (जो पाकिस्तान ने ठुकरा दी) 1981 में 4.2 बिलियन डॉलर तथा, 1988 में 402 बिलियन डॉलर की सहायता प्रदान की। अमेरिका ने इस सहायता के अन्तर्गत एक 16 लड़ाकू विमान, सी हॉक प्रक्षेपास्त्र, आवाक्स पूर्व चेतावनी लड़ाकू विमान, साईडवाइडंर प्रक्षेपास्त्र, पनडुब्बियाँ आदि प्रदान की। दूसरी और भारत को भी पूर्व सोवियत से 1980 में 1.6 बिलियन डॉलर तथा 1981 में 3 बिलियन डॉलर के हथियारों की आपूर्ति के समझौतों पर हस्ताक्षर किए। चतुर्थ, दोनों देशों द्वारा परमाणु क्षमता विकसित व हासिल करना भी इन दोनों के गैर–मैत्रीपूर्ण संबंधों का परिचायक है। भारत द्वारा 1974 में पोखर–1 में शान्तिपूर्ण उद्देश्यों हेतु किए गए परिक्षण के पश्चात दोनों देशों में परमाणु शक्ति प्राप्ति की होड़ लग गई। भारत के कार्यक्रमों के जवाब में पाकिस्तान ने विदेश से चोरी की गई तकनीकों के माध्यम से अब्दुल कादिर खान के नेतृत्व में 1984 में परमाणु कार्यक्रमों हेतु 'यूरेनियम संवर्द्धन' क्षमता तथा 1979 में परमाणु बम्ब की क्षमता प्राप्त कर ली। इससे दोनों के बीच सन्देह की स्थिति और गम्भीर हो गई। पंचम, परमाणु क्षमता के साथ–साथ प्रक्षेपास्त्र विकसित करने हेतु भी दोनों में होड़ लग गई। जहां भारत ने अपने 'एकीकृत प्रक्षेपास्त्र विकास कार्यक्रम' के माध्यम से माध्यम से पाँच–अग्नि, पृथ्वी, त्रिशुल, नाग, आकाश–प्रक्षेपास्त्र विकसित करने के प्रयास किए, वहीं पाकिस्तान ने चीन व उत्तरी कोरिया से प्रक्षेपास्त्रों का आयात चोरी छिपे मंगाना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रक्रिया ने भी दोनों के मध्य अविश्वास प्रक्रिया को आगे बढ़ाया। षष्ट, हिन्दमहासागर में बाह्म ताकतों की सेनाओं की उपस्थिति को लेकर भी दोनों के विरोधी दृष्टिकोण रहे। भारत इस क्षेत्र के सैन्यीकरण के हमेशा विरूद्ध रहा हैं, जबकि अफगानिस्तान के सन्दर्भ को लेकर अमेरिका इस क्षेत्र में 19 देशों की एक 'सामरिक केन्द्रीय कमाण्ड' व्यवस्था का पाकिस्तान एक सदस्य रहा। सप्तम, 1984 से 1987 तक सियाचीन ग्लेशियर को लेकर भारत व पाकिस्तान के मध्य विवाद की स्थिति बनी रही। यह क्षेत्र सामरिक रूप से महत्त्वपूर्ण है। इस पर 1947 से 1984 तक भारत का कब्जा

रहा, परन्तु 1984 में अचानक पाकिस्तान द्वारा कब्जा करने की कोशिश से दोनों के बीच विवाद उत्पन्न हो गया। यद्यपि 1987 में यह शान्त हो गया, लेकिन इसका पूर्ण हल दोनों की सीमाओं के आंकलन के बाद ही हो पायेगा। अष्टम 1987 में दोनों देशों द्वारा परस्पर किया जाने वाला वार्षिक सैन्य अभ्यास भी तनाव का कारण बन गया था। भारत ने तीन वर्ष बाद पाकिस्तान सीमा के निकट 1987 में ब्रासटेक 'नाकम सैन्य अभ्यास करने की योजना बनाई। भारत इस महत्त्वपूर्ण अभ्यास के द्वारा अपने सभी आधुनिकतम शस्त्रों की विश्वसनीयता जानना चाहता था। परन्तु पाकिस्तान को इससे खतरे की आशंका हो गई तथा उसने भी अपनी सीमा में 'जरबेमोमिन' अभ्यास शुरू कर दिया। अतः दोनों द्वारा किये जाने वाले अभ्यास से एक बार फिर युद्ध की सम्भावनाएँ दिखाई देने लगी।

उपरोक्त विषयों पर मतभेदों का अर्थ यह नहीं था कि दोनों देशों के मध्य आम सहमति का बिल्कुल अभाव था। बल्कि कुछ मुद्दों पर दोनों के बीच इस समय में समझौते तो भी हुए एक दूसरे के परमाणु संयन्त्रों पर हमला न करने सैन्य अभ्यासों की पूर्व जानकारी देने सैन्य डायरेक्टरों के मध्य सीधी टेलीफोन सेवा, वायु सीमा के प्रयोग की अनुमति, रासायनिक हथियारों के प्रयोग पर निषेध आदि मुद्दों पर दोनों के बीचे पूर्ण सहमति बन गई। परन्तु कुछ मुद्दों पर सहमति बनाने के प्रयास दोनों देशों को करने पड़ेगे।

शीतयुद्धोत्तर युग में जहां सारी दुनिया में मूलभूत परिवर्तन देखने को मिले वैसी स्थिति भारत–पाक संबंधों में दृष्टिगोचर नहीं रही। ऐसा शायद इसलिए नहीं हो सका क्योंकि दोनों के मध्य अवरोधक पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुए थे। इसके अतिरिक्त, विभिन्न विश्वास पैदा करने वाले कदमों का विकास तथा विभिन्न दृष्टिकोणों में परिवर्तन अभी तक शायद नहीं हो पाया था। निम्नलिखित तत्वों ने इस प्रकार के संबंधों हेतु प्रमुख कारकों का कार्य किया–प्रथम, शीतयुद्धोत्तर युग में कश्मीर में आतंकवाद तथा उसे सीमापार से सहयोग की प्रक्रिया में बदलाव नहीं आया। द्वितीय दोनों देशों ने अपनी पुरानी वैमनस्य पूर्ण नीतियों का त्याग नहीं किया। तृतीय 6 दिसम्बर 1992 की बाबरी मस्जिद तोड़ने की घटना ने हिन्दू–मुस्लिम साम्प्रदायिक ताकतों को और मजबूत किया। चतुर्थ, 12 मार्च 1993 में हुए बम्बई बम्ब विस्फोटो ने धार्मिक कट्टरता को चरम सीमा पर पहुंचा दिया। पंचम, पाकिस्तान द्वारा अमेरिका से हथियार प्राप्त करने के कारण दोनों देशों के मध्य अविश्वास और बढ़ गया। षष्ट, सोवियत संघ के विघटन के बाद पाकिस्तान मध्य एशियाई बनाने गणराज्यों के साथ विशिष्ट, गठबन्धन बनाने में लीन हो गया। अतः इन सभी कारणों से शीतयुद्धोत्तर युग में शान्ति का लाभांश भारत व पाकिस्तान संबंधों तक नहीं पहुँचा।

भारत में संयुक्त मोर्चा की सरकार, निशेषकर इन्द्रकुमार गुजराल के समय द्वारा पड़ोसियों से मित्रता पूर्वक संबंधों हेतु 'गुजरात सिद्धान्त' स्थापित किया गया। इसके अन्तर्गत अपने पड़ोसियों को एक तरफा रियायत देकर भारत में उनसे मधुर संबंधों का प्रयास किया। इस प्रयास के बावजूद कश्मीर, सियाचीन, बुलर, दुलबुल सिंचाई परियोजना, सर क्रिक आदि समस्याओं के स्थाई समाधान के बिना दोनों देशों के बीच दूरगामी संबंधों की कामना करना व्यर्थ है। इस प्रकार शीतयुद्धोत्तर युग में भी कई मुद्दों पर दोनों देशों की समान बाध्यताएँ एवं जरूरते होने के बावजूद भी दोनों के बीच महत्त्वपूर्ण अवरोधक तत्व व्याप्त हैं। भविष्य में दोनों के बीच मधुर संबंधों एवं मित्रता हेतु बाहय एवं आन्तरिक तत्त्वों में परिवर्तन होना अनिवार्य हैं, वरना शीतयुद्धोत्तर युग में भी इस दोनों राष्ट्रों के बीच शीतयुद्ध जैसी स्थिति जारी रहेगी।

मई 1998 में हुए पोखरण–2 व छगाई में हुए परमाणु विस्फोटो के बाद यह परिवर्तन देखने को मिला। शायद पहली बार दोनों शस्त्र होड़ में एक दूसरे से बराबरी पर आ गये थे। इसके अतिरिक्त, अन्तर्राष्ट्रीय दबाव का सामना भी दोनों को ही समान रूप से परेशान कर रहा था। शायद इसी कारण से दोनों वार्ताओं हेतु सहमत हो गए। फरवरी 1999 में वाजपेयी की लाहौर यात्रा व बस राजनय के अन्तर्गत दोनों के मध्य लाहौर घोषणा पत्र, सहमति के ज्ञापन, एवं संयुक्त वक्तत्व पर आम सहमति बन सकी। अतः इस उतार–चढ़ाव के दौर में दोनों के वैमनस्य संबंधों से सदभावना तक की यात्रा कई कारकों के सकारात्मक व नकारात्मक परिणामों के कारण हुई।

17.3.2.5 कारगिल युद्ध से पुनः संबंध स्थापना तक (1999–2020)

लाहौर यात्रा से उत्पन्न आशावादी संबंधों की परिणति अधिक देर तक न रह सकी। लाहौर भावना के क्रियान्वयन से पूर्व ही पाकिस्तान द्वारा भारत पर कारगिल युद्ध थोंप कर आपसी संबंधों को पुनः वैमनस्य पूर्ण बना दिया। कई सन्दर्भों में यह युद्ध 1948, 1965, 1971 के समकक्ष ही था। इस युद्ध ने यह भी साबित कर दिया कि भारत–पाक संबंधों में हमेंशा संघर्ष से शान्ति व फिर संघर्ष ही मात्र विकल्प है सहयोग नहीं।

यहां यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि किन कारणों से पाकिस्तान ने भारत पर युद्ध किया था भारतीय गुप्तचर व्यवस्था पाकिस्तान की इस घुसपैठ के बारे में समय पर पता क्यों नहीं लगा सकी। यह भी अब ज्यादा अर्थ नहीं रखता कि भारत ने पूरा संयम बरतते हुए किस प्रकार अन्ततः पाकिस्तान सेना को नियन्त्रण रेखा के पार भेजा तथा अपना क्षेत्र खाली कराने में सफलता प्राप्त की। परन्तु यह सत्य है कि उपरोक्त युद्ध के बहुत से निकटवर्ती एवं दूरगामी परिणाम निकले जिनका दोनों देशों के संबंधों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इनमें से मुख्य केन्द्र बिन्दु बाते निम्न रही–प्रथम इस युद्ध से यह भ्रम टूट गया कि दोनों देशों की परमाणु क्षमता इनके मध्य ऐ निरोधक का कार्य कर सकती है। द्वितीय इससे लाहौर भावना के शान्ति व सुरक्षा पर पड़ने वाले दूरगामी प्रभावों का अन्त हो गया अर्थात लाहौर भावना निरस्त हो गई। तृतीय, कटटरवाद का गम्भीर खतरा भारत के निकट पड़ोस में स्थापित हो गया। चतुर्थ पाकिस्तान द्वारा मुजाहीदीन, तालिबान एवं कई इस्लामी संगठनों के तालमेल से यह संकेत मिले कि अब यह संकट दोनों देशों की सीमाओं तक सीमित न रह कर पश्चिमी एवं मध्य एशियाई गणराज्यों एवं दक्षिण एशिया से जुड़कर अत्यन्त गम्भीर बन गया। पंचम इससे भारत–पाक विवादों के अन्तर्राष्ट्रीय कारण एवं बाहय हस्तक्षेप की सम्भावनाएं बढ़ गई। अन्ततः इस युद्ध ने भारत–पाक संबंधों में पिछले कुछ वर्षों से स्थापित सभी विश्वसनीयता बढ़ाने वाले कदमो की पहल को समाप्त कर दिया।

कारगिल युद्ध के तुरन्त बाद 12 अक्तूबर 1999 में पाकिस्तान में निर्वाचित सरकार का तख्ता पलट कर सैनिक शासक की स्थापना हो गई। इस प्रक्रिया से दोनों के रिश्तों में सुधार की सम्भावनाओं को और धक्का लगा। पाकिस्तान के सैनिक शासक जरनल परवेज मुशरफ की कारगिल युद्ध में मुख्य भूमिका के कारण मामला और गम्भीर हो गया। आतंकवादी घटनाओं में और बढ़ोतरी होने लगी। 1 अक्तूबर को जम्मु विधानसभा वर आतंकवादी हमले एवं दिसम्बर में आई सी–814 विमान के कन्धार अपहरण ने संबंधों में और कड़वाहट पैदा कर दी। यह तनाव का दौर पूरे वर्ष 2000 में बना रहा।

इस तनावपूर्ण स्थिति को सामान्य करने हेतु, कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय दबावों के कारण शायद भारत ने रिश्तों में सुधार की पहल की। इस पहल के अन्तर्गत 14,16 जुलाई 2001 में 'आगरा शिखर वार्ता' का आयोजन किया गया। भारत द्वारा इस यात्रा की सफलता की कामनाओं के बावजूद यह सम्मेंलन विफल रहा। इसकी विफलता में कई कारणों का योगदान रहा जिनमें मुख्य रूप से वार्ताओं के प्रारम्भ होने से पूर्व विषय सूची तय करना, जनरल मुशर्रफ द्वारा कश्मीर को केन्द्र बिन्दु मानना, भारत में आकर भी पाकिस्तानी शासक द्वारा राजनयिक प्रोटोकॉल का पालन न करना आदि। यद्यपि यह सम्मेंलन विफल रहा लेकिन सरकार ने अपनी सफाई में इसे वार्ताओं की पहल प्रक्रिया में रूप में लिया।

इससे भी गम्भीर मामला 13 दिसम्बर 2001 को पाकिस्तानी आतंकवादियों द्वारा संसद पर किया गया हमला था। इस हमले के परिणामस्वरूप दोनों देशों के संबंध सुधार की प्रक्रिया को गहरा आघात पहुंचा। इसके कारण दोनों देशों के मध्य बस, रेल व हवाई सेवाये बन्द कर दी गई, भारतीय उच्चायुक्त को वापिस बुला लिया गया, उच्चायोग में स्टाफ की संख्या आधी कर दी गई, तथा दोनों देशों के परस्पर वायुमार्गों के प्रयोग को समाप्त कर दिया गया। इस सबसे गम्भीर भारत ने सीमाओं पर फौजों की तैनाती के साथ "ऑपरेशन पराक्रम" शुरू कर दिया। दोनों देशों के बीच तनाव और बढ़ गया। दोनों देशों द्वारा परस्पर प्रक्षेपास्त्रों के परीक्षणों को तीव्र करने से दोनों के

बीच होड़ बढ़ गई। दोनों के मध्य बातचीत बिल्कुल समाप्त हो गई। परन्तु कई अन्तर्राष्ट्रीय दबावों, संसाधनों पर बढ़ते खर्च सेना की तैनाती से विशेष परिणाम न आने आदि कारणों से शायद 16 अक्तूबर 2002 को फौजों की वापसी शुरू हो गई। अन्ततः 18 अप्रैल 2003 को श्रीनगर में अपनी आम सभा में प्रधानमंत्री वाजपेयी ने पुनः पहल कर पाकिस्तान की और दोस्ती का हाथ बढ़ाया है। इसके बाद दोनों के बीच बस सेवा प्रारम्भ हो गई है। रेल यातायात व वायुमार्ग भी जल्द खुल जायेंगे। दोनों देशों के उच्चायुक्तों ने अपना–अपना कार्यभार सम्भाल लिया है। इन सभी विश्वसनीयता बढ़ाने वाले कदमों के बावजूद भी दोनों देशों के बीच रिश्तों को सामान्य करने हेतु समय लगेगा।

भविष्य में भारत व पाकिस्तान के संबंधों का सामान्य एवं अन्ततः मधुर होना विभिन्न कारको की भूमिकाओं पर निर्भर करेगा–प्रथम पाकिस्तान में प्रजातन्त्र की बहाली दोनों देशों के दूरगामी एवं स्थाई रिश्तों के लिए अति अनिवार्य है। द्वितीय, दोनों ही देश तीसरे देश की मध्यस्थता से कितना ही इन्कार करे, परन्तु दोनों ही आज अमेरिका की भूमिका से काफी हद तक प्रभावित हुए है। तृतीय, वर्तमान समय में दोनों देशों के आर्थिक कारकों का दबाव समूह के रूप में कार्य करना भी इनके संबंधों में बदलाव ला सकता है। चतुर्थ दोनों ही देशों को कश्मीर समेत सभी मुद्दों पर एक समग्र रूप में प्रयास हेतु एक दिशा निर्देश पर सहमति व्यक्त करनी होगी। पंचम, दोनों देशों को नियन्त्रण रेखा के सही निर्धारण एवं आंकलन पर सहमत होना होगा। अन्ततः दोनों देशों द्वारा शिमला समझौता एवं लाहौर घोषणा के ढ़ाचो को स्वीकारते हुए उनकी भावनाओं के अनुरूप ही बातचीत का दायरा तक करना पडेगा।

परन्तु वर्तमान संबंधों की स्थिति को देखते हुए यह सब इतना सरल नहीं लगता। दोनों देशों के संबंधों के इतिहास के देखते हुए भी इस प्रकार की सम्भावनाएं बहुत कम है। यद्यपि इनके जटिल मतभेदों से परस्पर द्विपक्षीय ही नहीं अपितु क्षेत्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इसीलिए दोनों की परस्पर बाध्यताओं के साथ–साथ क्षेत्रीय एवं विश्वस्तीय ताकतें भी इन पर दबाव बनाये हुए हैं परन्तु इन सबका कितना सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा तथा इनके भावी संबंध किसी प्रकार के होंगे यह सिर्फ समय ही बतायेगा।

17.3.3 भारत श्रीलंका संबंध (Indo-Sri Lanka Relations)

भारत व श्रीलंका के संबंधों में सहयोग एवं संघर्ष का मिश्रण देखने को मिलता है। दोनों ही एक ही क्षेत्र में स्थित होने के बावजूद भौगोलिक, सामरिक, संसाधनों के विकास, आर्थिक व राजनैतिक सन्दर्भों में विभिन्नता रखते हैं इसी प्रकार दोनों के विभिन्न राष्ट्रीय हित एवं प्राथमिकताओं के कारण उतार चढ़ाव देखने को मिलता है। कुछ हद तक दोनों के संबंधों में राजनैतिक विरासत एवं भौगोलिक सामीप्य से पड़ने वाले अधिप्लावन प्रभावों का असर भी देखने को मिलता है। अध्ययन की सुविधा हेतु इनके संबंधों को चार प्रमुख चरणों में वर्णन किया जा सकता है। जो इस प्रकार से है।

17.3.3.1 मतभेदपूर्ण संबंध (1948–1956)

श्रीलंका में संयुक्त राष्ट्रीय दल के प्रारम्भिक कार्यकाल के दौरान दोनों देशों की विरोधी विदेश नीति अभिमुखन के कारण दोनों के बीच मतभेद बने रहे। श्रीलंका जहां अंग्रेजी सैन्यगठबन्धन का हिस्सा रहा, अपने नौसैनिक व हवाई अड्डों को इंग्लैड़ को प्रयोग हेतु देता रहा, वहीं भारत गुटनिरपेक्षता व सैन्य गठबन्धनों से दूरी की बात करता था। इसके अतिरिक्त, चीन व पाकिस्तान से श्रीलंका की मित्रता, सानफ्रांसिस्को सम्मेंलन में भाग लेना, उपनिवेशवाद की परिभाषा आदि मुद्दों पर भी दोनों के परस्पर विरोधी विचार आवश्यक था। इसका अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता कि दोनों देश प्रत्येक मुद्दों पर मतभेद रखते थे। उपनिवेशवाद के विरूद्ध संघर्ष, इंडोनेशिया की स्वतन्त्रता, गुटनिरपेक्षता में आस्था, राष्ट्रमण्डल की सदस्यता, प्रवासी भारतीयों की समस्या के समाधान के सन्दर्भ में, सैन्य गठबन्धनों में शामिल होने जैसे कई ऐसे विषय थे जिन पर दोनों समान राय रखते है। शायद इसी कारण से 1954

में श्रीलंका में बसे तमिल भारतीयों की समस्या के समाधान हेतु नेहरू–कोटेलवाला समझौता हस्ताक्षरित हुआ। अतः कुल मिलाकर प्रारम्भिक वर्षों में दोनों देशों के संबंध मैत्रीपूर्ण तो नहीं थे परन्तु उन्हें वैमनस्य पूर्ण संबंधों की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

25.3.3.2 मित्रतापूर्ण संबंध (1956–1976)

श्रीलंका में एस.डब्ल्यू.आर.डी. भण्डारनायके (1956–59) तथा श्रीमती भण्डारनायके (1950–65) की सरकारों के समय दोनों देशों के बीच मधुर संबंधों की शुरूआत हुई। सरकार की विदेश नीति भारतीय विदेश नीति से काफी हद तक समानता रखती थी। इस सरकार ने सत्ता में आते ही अपने यहां से नौसैनिक एवं हवाई अडडों के प्रयोग पर बाह्म शक्तियों को पूर्ण रूप से रोक दिया। इसके साथ–साथ इन्होंने गुट निरपेक्षता की नीतियों का बहुत सशक्त रूप से पालन किया। बाहय मसलो जैसे स्वेज संकट, तिब्बत मामला आदि विषयों पर भी भारत के रूख का समर्थन किया। इसके अतिरिक्त, प्रवासी भारतीयों के विषय पर फिर श्रीमती भण्डारनायके–लालबहादुर शास्त्री समझौता हुआ ताकि बाकी बचे हुए पहलुओं को हल किया जा सके।

इस काल में संबंधों को सुदृढ़ बनाने की दिशा में नेहरू ने मई 1957 में तथा श्री भण्डारनायके ने नवम्बर 1956 तथा दिसम्बर 1957 में परस्पर एक दूसरे के यहाँ यात्राएँ की। सहयोग की प्रतिक्रिया को आगे बढ़ाते हुए श्रीलंका ने कई विषयों पर भारत की पहल का साथ दिया। 1960 में गोवा के विषय पर श्रीलंका ने भारत के समर्थन में अपनी प्रतिक्रिया दी। गुटनिरपेक्षता की नीति का भी बहुत ही स्पष्टता से अनुसरण किया। प्रवासियाँ की समस्या हेतु 1964 में दोबारा श्रीलंका व भारत के बीच समझौता हुआ।

1962 में चीन द्वारा भारत पर आक्रमण करने पर उसे आक्रमणकारी घोषित नहीं करने पर दोनों के बीच मतभेद भी उभरे। लेकिन इस समस्या का दूसरा पहलू यह भी है कि इस आक्रमण के पश्चात श्रीलंका की पहल पर ही छः गुटनिरपेक्ष देशों का कोलम्बों में सम्मेंलन बुलाया गया ताकि इस समस्या का समाधान किया जा सके। यद्यपि यह सम्मेंलन बहुत सफल नहीं रहा क्योंकि समस्या का कोई समाधान नहीं निकला। परन्तु इस पूरे प्रकरण में श्रीलंका की सकारात्मक पहल व भूमिका को नकारा नहीं जा सकता।

श्रीमती भण्डारनायके की सरकार की हार के बाद 1965–70 तक डुडले सेनानायके सरकार का गठन हुआ परन्तु अन्ततः दोबारा श्रीमती भण्डारनायके सत्ता में आ गई। इस कार्यकाल (1970, 1977) में भी दोनों के मध्य सहयोग विकसित हुआ। सर्वप्रथम दोनों देशों के प्रयास से ही दिसम्बर 1971 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा हिन्दमहासागर को 'शान्तिक्षेत्र' घोषित कर दिया। द्वितीय, श्रीलंका में सरकार विरोधी गतिविधियों को दबाने में सन्दर्भ में भारत ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। तृतीय, 1974 में भारत ने उदारता दिखाते हुए कच्छद्वीप का टापू श्रीलंका को सौंप दिया। चतुर्थ, 1971 के भारत पाक युद्ध के दौरान श्रीलंका ने तटस्थता का रूख अपनाया। अन्तः जातीय समस्या को हल करने हेतु दोनों देशों ने 1974 में इन्दिरा गाँधी–भण्डारनायके संयुक्त प्रयास एवं समझौते के आधार पर इसे स्वीकृत किया गया। अतः यह कार्यकाल दोनों देशों के सम्बन्धों को अत्यन्त मधुर काल रहा है।

17.3.3.3 तनावपूर्ण संबंध (1977–1994)

इस काल में जयावर्द्धने (1977–87) एवं प्रेमदासा (1988–93) की सरकारों के कार्यकाल में तमिल प्रवासियों की समस्या ने एक महत्त्वपूर्ण मुददा बन कर दोनों देशों के मध्य तनावपूर्ण संबंध बनाये रखे। 1981 व 1983 के तमिल–सिंहली दंगो ने 1958 व 1977 में हुए दंगों की पुनरावृत्ति ही नहीं की बल्कि उसके घोर निराशावादी स्वरूप का प्रदर्शन किया। इस समस्या की गम्भीरता व बाद में तमिलवासियों द्वारा अलग तमिल राज्य की मांग को लेकर श्रीलंका में काफी खून बहा। भारत की इसके अधिप्लावन प्रभाव से नहीं बच सका। इसीलिए श्रीलंका एवं भारत सरकार के मध्य हमेशा तनाव की स्थिति बनी रही।

इस समस्या को सुलझाने हेतु दोनों देशों के बीच 26 मई 1987 को राजीव गाँधी–जयावर्द्धन समझौता सम्पन्न हुआ। इस समझौते की धाराओं 2.14–2.16 (C) के अन्तर्गत भारत ने श्रीलंका में शान्ति सेना भेज दी। इस शान्ति सेना को भेजने का सरकार के एक गुट ने विशेषकर प्रधानमंत्री प्रेमदासा ने खुल कर विरोध किया तथा कई बार मांग उठाई कि शानित सेना को वापिस लिया जाए। उधर दूसरी ओर तमिल संगठनों जैसे एल.टी.टी.ई. आदि ने भी इसका विरोध किया, क्योंकि भारतीय सेना श्रीलंका के सैनिको के साथ इसके विरूद्ध लड़ाई लड़ रही थी। श्रीलंका में यह रोष सरकार व तमिलों के साथ–साथ वहां के आम नागरिकों मे भी देखने को मिला। उदाहरणस्वरूप, जब राजीव गाँधी ने श्रीलंका की राजकीय यात्रा की तब 30 जुलाई 1987 को सलामी गारद के एक सिपाही ने राजीव गाँधी पर जान लेवा हमला कर दिया। अतः प्रेमदासा के राष्ट्रपति बनते ही भारत द्वारा बिना कार्य सम्पन्न किए अपनी शान्ति सेना को वापिस बुलाना पड़ा।

अतः इस युग में दोनों देशों के संबंध अत्यन्त तनावपूर्ण रहे। इस समय में भारत की छवि धूमिल होने के साथ–साथ दोनों के संबंधों पर भी प्रतिकूल असर पड़ा। पहले तो श्रीलंकावासी ही शायद भारत को एक उग्र एवं शक्ति पर आधारित राष्ट्र के रूप में देखते थे, परन्तु राजीव–जयवर्द्धने समझौते के बाद तो तमिल में भारत की छवि खराब हो गई। शायद इसीलिए निकट पड़ोसी एवं एक ही जाति के लोगों की बड़ी संख्या के बावजूद भारत की भूमिका अब प्रभावी नहीं रही। राजीव गाँधी की हत्या में भी एल.टी.टी.ई. के उग्रवादियों का हाथ होने के कारण अब भारत ने उन लोगों की समस्याओं के बारे में सोचना छोड़ दिया तथा न ही भारत का कोई प्रभाव अब इन संगठनों पर शेष है।

17.3.3.4 मधुर सम्बन्धों की पुनः वापसी (1994–2003)

सन् 1994 में श्रीलंका में सत्ता परिवर्तन के बाद श्रीमती चन्द्रिका कुमार तुंगा (सुपुत्री श्री व श्रीमती भण्डारनायके) के शासन की बागडोर सम्भालने (अगस्त में प्रधानमंत्री एवं नवम्बर में राष्ट्रपति) के बाद दोनों देशों के रिश्तों में तेजी से सुधार हुआ। इस प्रकार श्रीमती तुंगा ने एक बार फिर अपने पिता एवं माता के कार्यकाल की तरह दोनों के बीच अच्छे संबंध बनाने का प्रयास किए।

सत्ता परिवर्तन के बाद श्रीलंका के विदेश मंत्री ने अक्तूबर 1994 में भारत की यात्रा कर आपसी सहयोग के मुददों पर विश्वसनीयता बढ़ाने की कोशिश की। श्रीमती कुमार तुंगा द्वारा 1995 में राजकीय व 1996 में गैर राजकीय यात्राओं ने दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय सहयोग को गति प्रदान की। इसी समय भारत द्वारा भी 'गुटराल सिद्धांत' के द्वारा पड़ोसियों से वरीयता के आधार पर संबंध सुधारों की बात हो रही थी। अतः दोनों के मधुर संबंध होना अनिवार्य हो गया। द्विपक्षीय के आधार के साथ–साथ भारत के क्षेत्रीय सन्दर्भ में भी श्रीलंका से अच्छे संबंधों का प्रयास किया। मूलतः यह प्रयास दक्षेस के माध्यम से किया। परन्तु इसके साथ–साथ 1997 से 'बांग्लादेश, भारत, म्यंमार, श्रीलंका, थाईलैंड आर्थिक सहयोग (बी.आई.एम.एस.टी.ई.सी.) एवं 'हिन्दमहासागर टिम–क्षेत्रीय सहयोग संगठन (आई.ओ.सी.ए.आर.सी.) के माध्यम से भी सहयोग विकसित करने के कारगर प्रयास किए।

भारत में 1998 में राष्ट्रीय प्रजातान्त्रिक गठबन्धन की सरकार आने के बाद भी इनके संबंधों में सुधार जारी, रहे क्योंकि यह नई सरकार भी पड़ोसियों से मधुर संबंधों की पक्षधर है। मई 1998 में पोखरन–2 घटनाक्रम का भी दोनों देशों के संबंधों पर प्रतिकूल असर नहीं पड़ा। श्रीमती कुमार तुंगा द्वारा दिसम्बर 1998 में की गई भारत की यात्रा इसका प्रमाण है। उनकी इस यात्रा के दौरान मुक्त व्यापार की ओर बढ़ने हेतु दोनों देशों ने कई द्विपक्षीय आर्थिक समझौते किए जिनके आधार पर काफी वस्तुओं को आयात निर्यात करने पर परस्पर कर–मुक्त कर दिया। इससे दोनों के व्यापार में बढ़ोतरी के साथ–साथ श्रीलंका का व्यापार घाटा कम होगा तथा क्षेत्रीय सहयोग को भी बढ़ावा मिलेगा। इन संबंधों को मजबूती प्रदान करने हेतु विदेश मंत्री जसवन्त सिंह ने जून 2000 तथा इससे पूर्व श्रीलंका के विदेश मंत्री लक्ष्मण कादिरगभार ने मई 2000 में भारत की यात्राएँ की। इन यात्राओं के दौरान भारत ने

आर्थिक संबंधों में सुधार को आगे बढ़ाते हुए कुछ आर्थिक सहायता व कई वस्तुओं के आयात–निर्यात को सुगम बनाने के प्रयास किए।

श्रीलंका के चुनावों के बाद रानिल विक्रमसिंह ने प्रधानमंत्री बनने के बाद जून 2002 में भारत की चार–दिवसीय यात्रा की। यह यात्रा श्रीमती कुमार तुंगा की अप्रैल में की गई यात्रा के तुरन्त बाद थी। विक्रमसिंह ने इस दौरान एल.टी.टी.ई. के साथ नार्वे के माध्यम से हो रही शान्तिवार्ताओं का ब्यौरा देने के साथ–साथ द्विपक्षीय विभिन्न मुददों पर चर्चा एवं सहयोग बढ़ाने की कोशिश की। इस समय दोनों देश के बीच एक सहयोग के ज्ञापन पर हस्ताक्षर हुए। जिसके द्वारा भारतीय तेल कार्पोरेशन (आई.ओ.सी.) को श्रीलंका के त्रिणकोमली बन्दरगाह पर तेल सुविधाओं के प्रयोग करने के साथ–साथ वहां के बाजारों में 100 खुद्रा केन्द्र खोलने की अनुमति मिल गई। द्वितीय भारत श्रीलंका को 100 मिलियन डॉलर का नरम शर्तों वाला ऋण देने हेतु भी तैयार हो गया। तृतीय, दोनों देश तमिनाडु एवं उत्तरी श्रीलंका से जोड़ने वाले जमीनी पुल (एडमज ब्रिज) बनाने की सम्भावनाओं का पता लगाने हेतु एक अध्ययन दल के गठन पर सहमत हो गए। इस प्रकार उपरोक्त समझौतो के आधार पर दोनों के संबंधों में और प्रगाढ़ता आई।

जुलाई 2003 में श्रीलंका की मंत्री परिषद् ने संसद में नागरिकता सम्बन्धित नया विधेयक लाने की घोषणा की है जिस पर सत्ता पक्ष एवं विरोधी दलों से मध्य सहमति है। इसके अन्तर्गत वर्तमान में रह रहे। 1,68,141 भारतीय तमिलों को श्रीलंका की नागरिकता प्रदान की जायेगी। यदि यह कानून पास हो जाता है तो लम्बे समय से लम्बित भारतीय तमिलों की नागरिकता की समस्या समाप्त हो जायेगी, जिससे भारत–श्रीलंका संबंधों में सुधार होगा। वर्तमान में नार्वों की मध्यस्थता से चल रही श्रीलंका एल.टी.टी.ई. शान्ति वार्ता सफल हो जाती है तो काफी हद दोनों देशों के मध्य जातियता का संघर्ष समाप्त हो जायेगा। इससे दोनों देशों समाप्त हो जायेगा। इससे दोनों देशों के संबंध को व्यापाक आधार के साथ–साथ एक स्थाई निरोधक से राहत प्राप्त होगी।

उपरोक्त का यह आशय नहीं है कि अब दोनों देशों के मतभेद पूर्ण समाप्त हो गए है। बल्कि अभी भी कुछ विषयों पर दोनों को परस्पर विचार विमर्श करना अनिवार्य है। सर्वप्रथम, दोनों के आर्थिक संबंधों में असंतुलन बना हुआ है। जिसे दूर करना अति अनिवार्य है। श्रीलंका की ओर बढ़ता व्यापार एक संकट का सूचक है। व्यापार के विभित्रीकरण के साथ–साथ दोनों के मध्य व्यापार को अधिक तर्क संगत बनाना पड़ेगा। द्वितीय, दोनों देशों के मध्य तस्करी भी एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। दोनों राष्ट्रों को समुद्री सीमा के खुलेपन की वजह से इनके मध्य कुछ अपराधिक तत्व तस्करी करते हैं। अन्ततः भारतीय तमिलों की समस्या भी कुछ समय पहले तक एक गम्भीर समस्या रही है। परन्तु वर्तमान कानून बनाने से काफी हद तक इस समस्या का समाधान हो जायेगा। अतः निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं। कि विभिन्न उतार–चढ़ाव के बावजूद वर्तमान समय में दोनों देशों के संबंधों का ग्राफ सकारात्मक परिवर्तन की ओर बढ़ रहा है। यदि श्रीलंका में तमिलों के साथ शान्ति स्थापित हो जाती है तथा आर्थिक संबंधों में सुधार की प्रक्रिया जारी रहती है तो दोनों देशों के मधुर व स्थाई संबंधों की कामना की जा सकती है।

17.3.4 भारत–बांग्लादेश का संबंध (Indo-Bangladesh Relatiions)

भारत–बांग्लादेश संबंधों की पृष्ठभूमि न केवल दो पड़ौसी राष्ट्रों के मध्य संबंधों तक सीमित है, बल्कि बांग्ल–देश की उत्पत्ति में भारत की विशेष भूमिका के सन्दर्भ के कारण भी महत्त्वपूर्ण है। कई विशेषज्ञ तो बांग्लादेश के जन्म में भारत की इस भूमिका की तुलना 'दाई' की भूमिका से करते हैं। यद्यपि भारत ने सर्वप्रथम बांग्लादेश को पूर्ण आजादी से पहले ही 6 दिसम्बर 1971 को मान्यता प्रदान कर दी थी तथा 10 दिसम्बर 1971 को एक समझौता कर भारतीय सेना वा मुक्तिवाहिनी की एक संयुक्त कमान भी बना दी थी, तथापि थोड़े समय बाद ही शेख मुजीबुर्रहमान की मृत्यु के साथ स्थिति बदल गई। इस प्रकार दोनों के संबंधों में कई मुद्दों, विशेषकर गंगा के पानी के बंटवारे को लेकर, मतभेद भी उभर कर आये। इन दोनों के संबंधों का सुस्पष्ट अध्ययन हेतु तीन प्रमुख चरणों में आये

बदलावों के आधार पर किया जा सकता है जो इस प्रकार से है।

17.3.4.1 प्रमोदकाल (1971–1975)

भारत बांग्लादेश संबंधों का प्रथम चरण शेख मुजीबुर्रहमान के कार्यकाल (1971–1975) को माना जा सकता है जिसमें दोनों राष्ट्रों के मध्य अति घनिष्ठ संबंधों का विकास हुआ। राजनैतिक रूप से, भारत ने बांग्लादेश को आजाद कराने हेतु ही मदद नहीं दी, अपितु बाद में भी सहयोग जारी रहा। 1972 में ही दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों ने एक दूसरे के यहां सद्भावना यात्राएं की। 19 मार्च 1972 को दोनों के बीच 25 वर्षीय मित्रता व सहयोग की सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। विदेश नीति के सिद्धान्तों के सन्दर्भ में भी दोनों के दृष्टिकोणों में काफी समानताएं देखने को मिली। इसके अतिरिक्त, 1977 की भारत–पाक शिमला वार्ताओं में भी भारत ने बांग्लादेश के साथ पूर्ण सहयोग प्रकट करते हुए उसे सभी कार्यवाहियों से अवगत रखा। युद्धबन्दियों के सन्दर्भ में भारत–पाक समझौते (1973) वे भारत–पाक बांग्लादेश समझौते (1974) के द्वारा भी बांग्लादेश में सामान्य स्थिति बहाल करने के मित्रतापूर्ण प्रयास किए। अन्ततः 18 अप्रैल 1975 को एक अंतरिम समझौते द्वारा फरक्का विवाद सुलझाने का प्रयास किया। आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होते ही बांग्लादेश को 25 करोड़ रूपये के माल व सेवाएँ प्रदान करने के वचन के साथ–साथ 50 लाख पॉड की विदेश मुद्रा का ऋण दिया जिसकी अदायगी 5 वर्ष बाद 15 किस्तों में देने का प्रावधान किया। 1974 में दो आर्थिक एवं तीन कर्ज संबन्धित समझौते द्वारा भारत ने बांग्लादेश को 41 करोड़ के कर्ज दिए। भारत बांग्लादेश में चार संयुक्त उद्यम लगाने पर सहमत हो गया। संयुक्त जुट आयोग की स्थापना तथा तस्करी रोकने के उपायों पर दोनों के बीच सहमति व्यक्त हुई।

सांस्कृतिक सहयोग हेतु भी 1972 के समझौते के माध्यम से दोनों देशों के बीच शिक्षा, संस्कृति, विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में आदान–प्रदान हेतु आम सहमति बनी। शिक्षण सामग्री, पुस्तक–पुस्तिकाओं, पत्रिकाओं आदि के प्रकाशन सम्बन्धित सहयोग को विकसित करने को भी प्रोत्साहन दिया। उपरोक्त मधुर संबंधों के साथ कुछ विरोधी दलों ने भारत के बारे में भ्रामक प्रचार भी किया। बांग्लादेश के विदेश मंत्री ने भी अपने देश को दक्षिणपूर्व एशिया का भाग कहा। लेकिन विरोध के स्वर अधिक नहीं थे तथा न ही बहुत प्रभावी। परन्तु शेख मुजीबुर्रहमान की असामयिक हत्या ने बांग्लादेश की विदेश नीति, विशेषकर भारत–बांग्लादेश संबंधों को पूर्ण रूप से बदल दिया।

17.3.4.2 उतार–चढ़ाव का दौर, 1975–1995

यह दौर दोनों देशों के मध्य मतभेदों का काम ही रहा। कुछ वस्तुनिष्ठ एवं कुछ व्यक्तिपरक कारकों के कारण दोनों देशों के मध्य तालमेल का अभाव रहा। इस नकारानात्मक संबंधों हेतु कई प्रमुख कारण उत्तरदायी रहें–प्रथम, इस काल में ज्यादातर सरकारें मुजीबुर्रहमान के विरोधी गुटों की रही इसलिए उनकी विदेश नीति भी इनके विरोधी गुटो की रही इसलिए उनकी विदेश नीति भी इनके विरोधी स्वरूप वाली रही। द्वितीय, इस काल में बांग्लादेश की सरकारों का झुकाव पाकिस्तान से संबंध सुधारने पर भी लगा रहा। तृतीय–1970 व 1980 के दशकों में भारत की बढ़ती हुई सैन्य शक्ति के कारण भी वह इसे खतरे में देखने लगा। अन्तः देश की आन्तरिक राजनैतिक गतिविधियों के सन्दर्भ में भी कई बार सरकारों को भारत विरोधी नीतियां अपनानी पड़ी।

इस कार्यकाल में उतार चढ़ावों में प्रमुख रूप से कुछ विवादों की भूमिका भी रही। सर्वप्रथम, गंगा के पानी के बटवारे को लेकर फारक्का बाँध दोनों के मतभेदों का प्रमुख कारण बना। इस सन्दर्भ में 1975 में दोनों देशों के मध्य एक अल्कालीन समझौता हुआ, फिर बाद में 29 सितम्बर 1977 को जनता दल की सरकार ने एक दीर्घकालीन समझौता हस्ताक्षरित किया। उस समय ऐसा लगा कि शायद अब यह विवाद समाप्त हो गया है। यह स्थिति 1982 तक चली, इसके बाद बांग्लादेश द्वारा आपत्ति करने पर इस समझौते का संशोधित रूप लागू हुआ। परन्तु 1988 में मतभेदों के चलते दोनों देशों के मध्य 1996 तक कोई समझौता नहीं रहा।

भारत व बांग्लादेश के मध्य कुछ अन्त क्षेत्रों के विषय को लेकर भी विवाद रहा हैं। दो अन्तः क्षेत्र दाहाग्राम व अंगरपोटा के क्षेत्र में है परन्तु उन्हें बांग्लादेश से जोड़ने का कोई मार्ग नहीं था। इस हेतु बांग्लादेश को 1982 में 182×185 मीटर का तीन बीघे का गलियारा दिया गया। परन्तु मामला कोर्ट में जाने से लम्बीत पड़ गया और अन्तः यह समस्या 26 जून 1992 को भारत सरकार द्वारा बांग्लादेश को सौंपने के बाद हल हुई। इसके अतिरिक्त, चकमा शरणार्थियों, तस्करी, अवैध नागरिकों का भारत में रहना आदि कई ऐसे मुद्दे रहे जिसके कारण इस काल में दोनों के संबंध सामान्य नहीं बन पाये। दिसम्बर 1992 में बाबरी मस्जिद ध्वंस की प्रतिक्रिया भी बांग्लादेश में बड़ी तीव्र हुई। यद्यपि 1985 में दक्षेस की स्थापना से दोनों देशों को करीब आने के अवसर मिले, परन्तु इससे भी उत्पन्न सामीप्य दोनों देशों के रिश्तों को मित्रता में बदलने हेतु सक्षम नहीं रहा। यद्यपि दोनों के मध्य कहीं–कहीं तनाव में अवश्य कमी आई, परन्तु मुबीजबुर्रहमान काल जैसी मित्रता की पराकाष्ठा देखने को नहीं मिली।

17.3.4.3 नई शुरूआत, 1996–2020

1996 में बांग्लादेश में शेख हसीना वाजिद (मुजीबुर्रहमान की बेटी) की सरकार तथा भारत में संयुक्त मोर्चा की सरकार के आने से दोनों देशों के संबंधों में भी महत्त्वपूर्ण बदलाव आये। दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों ने एक दूसरे की पात्रा की तथा सद्भावनापूर्वक फारक्क जल विवाद का निपटारा कर दिया। 12 दिसम्बर 1996 को हस्ताक्षरित इस 12–सूत्री 30 वर्षीय संधि के द्वारा 1 जनवरी से 31 मई तक के दोनों के बीच गंगा के पानी का बंटवारा सुनिश्चित कर दिया। इसके अन्तर्गत यह प्रावधान किया गया कि यदि पानी का बहाव 70,000 क्यूसैक या इससे कम होगा तो दोनों देश समान बँटवारा करेंगे। यदि 70,000 से 75,000 होगा तो बांग्लादेश 35,000 क्यूसैक लेगा व बाकी पानी भारत के पास रहेगा। अन्तिम रूप में, बहाव, 75,000 क्यूसैक या अधिक होने पर 40,000 क्यूसैक भारत लेगा तथा बचा हुआ पानी बांग्लादेश को दे देगा। इस प्रकार से इस समझौते के आधार पर एक गहन समस्या का शान्तिपूर्ण हल निकाल लिया गया। यद्यपि दोनों ओर के नागरिकों एवं विश्लेषणकर्ताओं द्वारा आरोप–प्रत्यारोप लगाये जाते रहें है। परन्तु वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देखे तो यह दोनों के लिए लाभकारी रहा।

इसी समय में 'गुजरात सिद्धान्त' तथा दक्षिण एशिया व दक्षिण पूर्व में बांग्लादेश, श्रीलंका व भारत के रास्ते म्यंमार व थाईलैण्ड की ओर बढ़ते सहयोग से इन देशों में और नजदीकियां विकसित हुई। लेकिन कुछ मुद्दों को लेकर मतभेद आज भी बरकरार है। सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा अवैध रूप से भारत में रह रहे बांग्लादेशियों का है। इसके अतिरिक्त, पूर्वी राज्यों की ओर से सीमांकन का मुद्दा भी गहन है। यह विशेष सन्दर्भ में बांग्लादेश द्वारा भारतीय सीमा सुरक्षा बल के दो जवानों को मौत के घाट उतार देने से और गरमा गया। इसके अतिरिक्त, पूर्वी राज्यों के उग्रवादी संगठनों को बांग्लादेश में शरण देना एवं उनके प्रशिक्षण शिवर चलाने से दोनों के बीच तनाव और बढ़ गया है। उग्रवाद के मुद्दे पर भी दोनों के रूख में अन्तर हैं, विशेषकर मुस्लिम कट्टरवाद को लेकर। बांग्लादेश में आन्तरिक राजनीति, विशेषकर चुनाओं के संदर्भ, में, ने भी दोनों के संबंधों में गिरावट लाने का कार्य किया है। अन्तः दोनों के मध्य स्थित 4095 किला लम्बी सीमा रेखा का आकल्न नहीं अपितु पूर्णतया रोकथाम के इन्तजाम करना भी आवश्यक है क्योंकि इसने कई जटिल समस्याओं को जन्म दिया है।

अतः भविष्य में दोनों देशों के बीच मधुर संबंधों हेतु इन्हें संकीर्ण दृष्टिकोणों को त्याग कर सकारात्मक रूख अपनाना होगा। दोनों देशों को दूरगामी द्विपक्षीय, क्षेत्रीय एवं विश्व सन्दर्भ के बृहद् दायरे में आकर कार्य करना होगा। वर्तमान में बढ़ती हुई आर्थिक सहयोग की आवश्यकता को समझना होगा। दोनों देशों के जन मानस को करीब लाना होगा। इस दृष्टि से कलकता–ढाका बस योजना एक कारगर कदम हैं। आवश्यकता दोनों देशों के राजनीतिज्ञों को संवेदनशील एवं विवेकपूर्ण नीतियों का अनुसरण करने की है। यद्यपि दोनों के मध्य कोई महत्त्वपूर्ण निरोधक तत्व नहीं हैं, तथापि वर्तमान सम्बन्धों को सही प्ररिप्रेक्ष्य में ढालने की आवश्यकता है।

17.3.5 भारत–नेपाल संबंध

भारत व नेपाल के बीच गहन ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व भौगोलिक समानताओं के साथ–साथ 1700 किलोमीटर की खुली सीमाएँ हैं। जहां एक ओर नेपाल भारत के लिए अति महत्त्वपूर्ण भौगोलिक स्थिति वाला देश हैं, वहीं दूसरी ओर नेपाल का भू–बद्ध राष्ट्र होना इसे काफी हद तक भारत पर निर्भर बना देता है। द्विपक्षीय स्थिति के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का प्रभाव भी इस क्षेत्र पर देखने को मिलता है। अतः दोनों के रिश्तों में उतार–चढ़ाव मिलते है जिनका आकलन निम्न चरणों में किया जा सकता है।

17.3.5.1 मित्रतापूर्ण प्रारम्भ (1947–55)

भारत–नेपाल संबंधों का आरम्भ सुखद एवं मैत्रीपूर्ण तरीके से हुआ। दोनों के मध्य इस प्रकार के संबंधों हेतु कई कारक जिम्मेंदार रहे– प्रथम, दोनों के मध्य 1947 में मित्रता की नई संधि होने तक 'यथास्थिति' बनाए रखी तथा 1923 की अंग्रेजों के काल की संधि को जारी रखा। द्वितीय, स्वतंत्र भारत की सेना में गोरखा लोगों की भर्ती पहले की भांति जारी रही। तृतीय, नेपाल के संविधान निर्माण में सहायता हेतु भारतीय राजनीतिज्ञ श्री प्रकाश को उनकी मदद हेतु भेजा। चतुर्थ, 1950 में भारत–नेपाल मैत्री संधि पर हस्ताक्षर हुए। पंचम, भारत ने नेपाल की शांति व सुरक्षा हेतु "सैन्य चौंकिया स्थापित की। षष्ठ, नेपाल में राणाशाही के अंत में भी भारत ने सहयोग प्रदान किया। सप्तम, भारत ने नेपाल की सुरक्षा को भारतीय सुरक्षा व्यवस्था का अंग ही माना। अन्ततः भारत ने नेपाल को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता दिलाने हेतु केवल प्रयास ही नहीं किए अपितु 1955 में उसे यह सदस्यता भी दिलवाई।

इन कारणों से दोनों देशों में घनिष्टता बन गई, इसलिए भारत ने नेपाल की आर्थिक, विज्ञान एवं सैन्य क्षेत्रों में सहायता करनी शुरू कर दी। उदाहरणस्वरूप, भारत ने नेपाल हेतु 37 करोड़ की लागत से कोसी नदी पर बांध बनवाया, जिससे नेपाल को मुफ्त बिजली एवं सिंचाई की सुविधाओं की आपूर्ति कराई। भारत के प्रति उदगार व्यक्त करने हेतु 1955 में नेपाल के महाराज ने भारत की यात्रा भी की। अतः यह युग दोनों के मधुर संबंधों का समय रहा।

17.3.5.2 परिवर्तन का युग (1955–62)

इस युग में नेपाल का चीन की ओर झुकाव होने के कारण भारत से संबंधों में परिवर्तन आने शुरू हो गए। भारत ने आर्थिक एवं अन्य सहायता व सहयोग के माध्यम से इन संबंधों में आई गिरावट को रोकने के प्रयास भी किए, परन्तु सफल नहीं हो सका। इन परिवर्तित संबंधों हेतु शायद भारत व नेपाल दोनों ही उत्तरदायी थे। भारत द्वारा (1954) चीन के साथ व्यापारिक संधि में तिब्बत स्वायत क्षेत्र को चीन का हिस्सा मान लेने से शायद नेपाल को आशंका होनी शुरू हो गई। दूसरी ओर अब नेपाल को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता मिल चुकी थी सो वह अकेले भारत की ओर ही झुकाव न करके अपने रिश्तों को दोनों देशों के मध्य संतुलित रखना चाहता था।

नेपाल के चीन की ओर बढ़ते कदमों की झलक उसकी विभिन्न नीतियों से स्पष्ट हो जाती है। प्रथम, नेपाल के प्रधानमंत्री ने 1956 में चीन की यात्रा की। द्वितीय, नेपाल व चीन के बीच 20 सितम्बर 1956 को मैत्री संधि पर हस्ताक्षर किए गए। तृतीय, चीन के प्रधानमंत्री चाऊ–एन–लाई ने भी 1957 में नेपाल की यात्रा की। चतुर्थ, 5 अक्तूबर 1961 को चीन व नेपाल के बीच सीयमा समझौते पर हस्ताक्षर किए गए जिसमें भारत की कोई सलाह नहीं ली गई। अन्ततः, चीन–नेपाल समझौते के कारण चीन ने ल्हासा से काठमाडू तक न केवल सड़क तैयार कर ली, अपितु नेपाल को सैन्य व आर्थिक सहायता भी देना प्रारम्भ कर दिया।

नेपाल के मधुर होते चीन संबंधों से भी अधिक आश्चर्य भारत को तब हुआ जब महाराजा महेन्द्र ने बी.पी. कोईराला की प्रजातांत्रिक तरीके से चुनी सरकार को 15 दिसम्बर 1960 को भंग कर दिया। यद्यपि भारत–नेपाल के राजनैताओं ने परस्पर यात्राएँ भी की, परन्तु नेपाल की विदेश नीति में कोई बदलाव नहीं आया। राजा महेन्द्र ने

सितम्बर 1961 में चीन की भी यात्रा की। दोनों के संबंधों का निम्नतम स्तर जब आया तब 1962 में भारत–चीन युद्ध में पूर्णरूप से तटस्थ रहा तथा चीन की किसी भी कार्यवाही की निंदा की। अतः यह युग भारत–नेपाल की बजाय नेपाल–चीन मधुर संबंधों का युग था तथा लगभग इसी समय में भारत व चीन के रिश्तों में भी दरार आना आरंभ हो चुका था।

17.3.5.3 नये समीकरणों का युग (1963–71)

भारत–चीन युद्ध के दौरान नेपाल के रवैये को देखकर भारत ने इस ओर अधिक संवेदनशीलता दिखाना शुरू कर दिया। इस कार्यकाल में भारत के सभी प्रमुख राजनेताओं ने नेपाल का दौरा कर दोनों के मध्य उपजी गलतफहमियाँ को दूर करने के प्रयास किए। अब नेपाल की उदारता से सहायता करते हुए वहां के ढ़ाचागत विकास पर जोर दिया। उदाहरण के रूप में 1964 में भारत ने 9 करोड़ की लागत से सुगौली ओश्वरा सड़क निर्माण किया, काठामांडू–रक्सौल सड़क निर्माण को मंजूरी दी, तथा कोसी योजना को अपने खर्चे पर पूर्ण किया। इसके अतिरिक्त अब भारत ने दोनों के मध्य मतभेद वाले मुद्दों को भी ज्यादा तूल नहीं दी।

दूसरी ओर नेपाल के व्यवहार में भी बदलाव आया तथा पूर्णतयः चीन का पक्षधर नहीं रहा। परन्तु कुछ मुद्दों पर विवादास्पद स्थिति अवश्य बनी रही। प्रथम, नेपाल–चीन सैन्य चौंकियों से भारतीय तकनीकी समूह के सैनिकों को वापस बुलाने हेतु कहना। द्वितीय, भारत–नेपाल मैत्री संधि (1950) पर आपत्तियाँ उठाई गई अन्ततः 1970 से ही व्यापार एवं पारगमन संधि के बारे में विवाद पनपा। परन्तु इन सबके बावजूद नेपाल की भू–राजनैतिक एवं सामरिक स्थिति देखते हुए भारत ने इन विषयों पर नरम रूख अपनाते हुए नेपाल से संबंध बनाये रखने व सुधारने के प्रयास किए। नेपाल की भी बाध्यता यह थी कि वह भी पूर्णरूप से चीन की ओर नहीं जा सकता था। अतः दोनों के मध्य अनुकूल संबंध बने रहे।

17.3.5.4 मतभेदों के बावजूद सामान्य संबंध (1972–79)

यह युग दक्षिण एशिया में दो महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ शुरू हुआ। 1971 में भारत–सोवियत मैत्री एवं भारत–पाक युद्ध में भारत की विजय ने इसे एक मजबूत क्षेत्रीय शक्ति बना दिया। दूसरी ओर 1972 में महाराजा महेन्द्र के स्थान पर उसके बेटे वीरेन्द्र ने राजगद्दी सम्भाली जो उदार एवं प्रजातांत्रिक प्रवृति के राजा थे। इसके परिणामस्वरूप दोनों के बीच मधुर संबंधों का विकास अनिवार्य हो गया।

इसी बीच 1975 में सिक्किम को भारत में मिलाने तथा नेपाल को तेल व पेट्रोल का कोटा न देने से दोनों के बीच तनाव का माहौल बन गया था। परन्तु जनता दल के शासक के दौर (1977–79) में पुनः मधुर संबंध बने क्योंकि उनकी विदेश नीति के अन्तर्गत पड़ोसियों से मित्र.ता पूर्वक संबंधों के विकास को प्राथमिकता दी गई थी। परन्तु इस समय का महत्त्वपूर्ण मतभेद नेपाल को 'शांति क्षेत्र' घोषित करने को लेकर रहा है। जहां नेपाल का तर्क था कि भू–बद्ध राज्य होने के कारण उसके आर्थिक विकास हेतु अनिवार्य हैं, वहीं भारत इस अवधारणा को संकीर्णता के आधार पर मना करता आया है। अतः इस युग में जहां 'शांति क्षेत्र' की घोषणा व सिक्किम के भारत में विलय को लेकर मतभेद रहें, वहीं पर आर्थिक एवं व्यापारिक क्षेत्रों में संबंध सामान्य बने रहे।

17.3.5.5 उतार–चढ़ाव परन्तु सुखद संबंध (1980–2003)

1980 के दशक के घटनाक्रम से दोनों देशों के बीच सुखद संबंधों होने का आभास हुआ। सर्वप्रथम, 1979 में सोवियत संघ के अफगानिस्तान में सैन्य हस्ताक्षेप को लेकर दोनों देशों के बीच आम सहमति रही कि इस मसले को राजनयिक व राजनैतिक तरीके से हल करना चाहिए था। द्वितीय, दोनों देशों ने 1978 की व्यापारिक एवं पारगमन की संधि को 1983 में पुनः 5 वर्षों हेतु मंजूरी प्रदान कर आर्थिक संबंधों को और सुदृढ़ बनाया। तृतीय, इन्हीं सुधरते संबंधों के परिचायक के रूप में भारत से राष्ट्रपति नीलम संजीवा रेड्डी (1981) विदेश मंत्री नरसिम्हाराव (1992) व

राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह (1986) ने नेपाल की तथा नेपाल से महाराजा वीरेन्द्र (1980 व 1985) व प्रधानमंत्री सूर्य बहादुर थापा (1983) ने भारत की यात्राएँ की।

परन्तु 1980 के दशक के अन्त तक आते–आते 'शांति क्षेत्र' पर असहमति के साथ–साथ नेपाल द्वारा हथियारों के आयात, परमिट व्यवस्था लागू करना, नागरिकता की समस्या, व्यापार व पारगमन संधि पर विवाद आदि विषयों पर भी दोनों देशों के मध्य मतभेद बने हुए है। 1989 में भारत द्वारा दोनों के मध्य व्यापार व पारगमन की संधि को भारत द्वारा पुनः न लागू करने से बड़ा संकट खड़ा हो गया था। नेपाल की अर्थव्यवस्था चरमराने के साथ–साथ जनजीवन पर भी गहन प्रभाव पड़ा। लेकिन 1990 में संयुक्त मोर्चा की सरकार के आने से स्थिति सुखद बन गई। भारत ने 1991 में एक की बजाय दो संधियों पर हस्ताक्षर किए जिनके अन्तर्गत व्यापार एवं पारगमन ने अलग–2 दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किए गए। बाद में प्रधानमंत्री कोईराला (1991) व नरसिम्हाराव (1992) ने एक दूसरे के देशों में यात्रा कर संबंधों को मजबूती प्रदान की।

1994 में नेपाल में साम्यवादी दल की सरकार आने के बाद संबंधों में शंका उठी, लेकिन वह भी निरर्थक सिद्ध हुई। 1997 में 'गुजराल सिद्धान्त' की स्थापना से दोनों देशों में और सौहाई बढ़ा। इसी काल में महाकाली परियोजना, पंचेश्वर परियोजना, टनकपुर बिजली घर व टनकपुर तथा शारदा बैरेज के निर्माण पर सहमति व्यक्त की गई। इसके अतिरिक्त, नई हवाई सेवाओं, व्यापार, संचार, पर्यटन आदि के संदर्भ में भी समझौते एवं सहमतियां प्रकट की गई। नेपाल को पूर्व प्रदत्त राधिकापुर के अतिरिक्त फुलवारी होकर बांग्लादेश के माध्यम से एक और व्यापारिक मार्ग की सुविधाएँ प्रदान की गई।

इन सभी का यह अर्थ नहीं था कि अब कोई मतभेद नहीं रहे। सबसे महत्त्वपूर्ण मतभेद नेपाल में उग्रवादियों को शरण देने के बारे में चिन्ता का है। भारत का मानना है कि पाकिस्तान की गुप्तचर एजेंसीं आई.एस.आई. की भारत विरोधी गतिविधियाँ भी नेपाल में सक्रिय हैं। दिसम्बर 1999 के आई.सी. – 814 यात्री विमान का काठमांडू से कंधार ले जाना इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। द्वितीय 1991 की व्यापार संधि के दुरूपयोग से भी भारत को चिंता बनी हुई है। इसके प्रावधान का दुरूपयोग कर नेपाल के व्यापारी तीसरे देश से माल मंगा कर भारत की मंड़ियों में कर–मुक्त होने के कारण आसानी से भेज देते हैं। विदेश मंत्री जसवन्त सिंह की नेपाल यात्रा के दौरान अगस्त 2001 में नेपाल चाहता था कि यह संधि स्वतः अगले पांच साल जारी रहे। तृतीय, 2001 के प्रारम्भ में सम्पूर्ण राजवंश की नृशंस हत्या के बाद आन्तरिक स्थिति, विशेषकर माओवादियों की गतिविधियों, से भारत की चिंताएं बढ़ गई हैं। लेकिन इन मतभेदों के बावजूद भी दोनों देशों के मध्य वर्तमान में कोई रूकावट वाला अवरोधक नहीं है। अतः आशा है कि द्विपक्षीय आधार पर दोनों के रिश्तों में सुधार जारी रहेगा। क्षेत्रीय आधार पर भी जनवरी 2002 में हुई दक्षेस की बैठक में आतंकवाद के मुद्दे पर आम सहमति बनी जिससे इनके बीच एक बड़ी रूकावट समाप्त हो जायेगी। विश्व स्तर पर आये बदलाव व वर्तमान सरकार की नीतियां भी पड़ोसियों से मधुर संबंधों में विश्वास रखती है। बाकी आने वाला समय निर्धारित करेगा। लेकिन तत्थों के आधार पर भविष्य में दोनों देशों के बीच मधुर संबंधों की आशा की जा सकती हैं।

17.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भारत अपनी विदेश नीति में हमेशा अपने पडोसियों को महत्त्व देता है। परन्तु राजनैतिक विरासत, बाह्म हस्ताक्षेप, भौगोलिक स्थिति, विकास में विभिन्नता, सैनिक, क्षमताओं में अलग स्थिति आदि ऐसे कारण रहें है। जिनके कारण ज्यादातर पडोसियों से मधुर संबंधों का अभाव रहा है। भारत द्वारा की गई सभी पहल का बहुत साकारात्मक प्रभाव देखने को मिला। मोदी शासन में 'पडोसी प्रथम' तथा अति सक्रियता से भी अधिक बदलाव नहीं आये। अतः भारत व पडोसियों के मध्य उतार–चढ़ाव वाले संबंध ही आने वाले समय में बने रहेगें।

1. **अन्तिम चरण (2014–2020)** – मोदी के शासन काल का प्रारम्भ पडोसियों को महत्त्व देने से हुआ। इसीलिए मोदी के शपथ ग्रहण समारोह में दक्षिण–एशिया के पडोसी देशों को आमन्त्रित किया गया। इसके अतिरिक्त मोदी ने अपनी विदेश नीति में 'पडोसी प्रथम' का नारा दिया। मोदी स्वयं भूटान, नेपाल, पाकिस्तान व श्रीलंका गए। विदेश मंत्री ने भी इन राज्यों का दौरा किया। बहुत से पुराने विवादों को सुलझाने व नवीन समझौतों पर हस्ताक्षर किए। इस प्रकार पडोसी राज्यों के साथ यथार्थवाद एवं व्यवहारिकता पर आधारित अति सक्रियता की नीति अपनाई है। यह नीति से किस पर चीन के बढ़ते प्रयास को रोकना तथा भारत के साथ गर्म जोशी वाले संबंध स्थापित करेगी यह केवल समय बतायेगा। क्योंकि भूटान व बांग्लादेश को छोडकर अभी–अभी कई पडोसियों से संबंधो में अपेक्षित मधुरता का अभाव है।

2. **मोदी के शासन काल में (2014–2020)** – चीन भारत की विदेश नीति में महत्त्वपूर्ण स्थान पर रहा। मोदी व चीन के राष्ट्रपति के बीच औपचारिक एवं अनौपचारिक स्तर पर काफी मुलाकाते हुई है। चीन आज भारत का व्यापार में नम्बर एक देश भी है। परन्तु दोनों के रिस्तों में मधुरता का अभाव अभी भी है। दोनों के बीच सीमा विवाद, सीपेक कार्यक्रम, बेल्ट एण्ड रोड पहल, सिल्क रूह, पर्ल ऑफ सी, साऊच चाईना सी आदि को लेकर टकराव के कई बिन्दू उपस्थित है। भारत–अमेरिका सामरिक साझेदारी एवं हिन्द–प्रशान्त सागर में भारत का बढ़ता तनाव भी दोनों के बीच टकराव के कारण है। अतः चीन के साथ रिस्तों में निरन्तरता अधिक व बदलाव कम देखने को मिल रहा है।

3. **मोदी के कार्यकाल में** – पाकिस्तान से बातचीत के दौर प्रारम्भ होने की सम्भावनाएं बढ़ी, लेकिन ज्यादा कुछ नहीं हुआ। नवाज शरीफ व मोदी के बीच मित्रता के सेतु के प्रयास हुए, परन्तु पठानकोट व उरी की घटनाक्रम तथा भारत द्वारा सर्जिकल स्ट्राईक से स्थिति पहले की तरह बन गई। ईमरान खान द्वारा करतापुर कोहिडोर के खोलने से भी स्थिति में ज्यादा बदलाव नहीं आया, क्योंकि पाकिस्तान सेना द्वारा नियन्त्रण रेखा के उल्लघन व गोलाबारी की घटना का सिलासिला अभी नहीं थमा है। अतः दोनों के रिस्तों में कोई सकारात्मक बदलाव की सम्भावनाएँ अभी काफी कम है।

4. मोदी सरकार के गठन के बाद श्रीलंका से भी संबंध सुधारने के भरसक प्रयास हुए। श्रीलंका के राष्ट्रपति ने 2015 में भारत की यात्रा की। मोदी ने भी 2015 व 2017 में श्रीलंका की यात्रा की। दोनों के बीच परमाणु असैनिक सहयोग तथा मटाला एयरपोर्ट बनाने पर भी समझौता हुआ परन्तु श्रीलंका में चीन के प्रभाव को देखते हुए अभी यह जल्द बाजी होगी कि भारत व श्रीलंका के संबंध प्रगाढ़ हो रहे है।

5. मोदी के शासन काल में बांग्लादेश के संबंधों में अप्रत्याशित बदलाव देखने को मिला। दोनों के बीच 2015 में लैंड बाऊड़री समझौते से काफी मधुर संबंध विकसित हुए है। दोनों के बीच बस सेवाओं के साथ–साथ तेल व गैस पाईपलाइन से सम्बन्धित समझौते हुए है। इन दोनों के सम्बन्धों में सुधार अवश्य हुआ है, लेकिन अभी भी कुछ विवादास्पद मुद्दे उपस्थित है। इसके साथ–साथ चीन के बढ़ते प्रभाव को भी नहीं नकार सकते। दोनों के रिश्तों में प्रगाढ़ता बढ़ेगी या नहीं यह केवल समय ही बता पायेगा।

6. मोदी ने अपने कार्यकाल में नेपाल से रिश्ते सुधारने के अत्याधिक प्रयास किए। इस छोटे से कार्यकाल में मोदी ने नेपाल की चार बार यात्राएं की। नेपाल ये सर्वोच्च न्यायालय के भवन के उद्घाटन के साथ–साथ हाइड्रोइलेक्ट्रिक प्रोजेक्ट पर भी हस्ताक्षर किए। नेपाल को US $1 बिलियन के कर्ज के साथ–साथ एक HAL ध्रुव हेलिकोपटर भी दिया। काठमाण्डू में ट्रोया केन्द्र का उद्घाटन भी किया। परन्तु आज भी दोनों के मध्य विवाद के कई बिन्दु मौजुद है। साथ ही चीन–नेपाल में बढ़ती मित्रता भी भारत में शंका पैदा करती है। इसीलिए दोनों के संबंध अभी भी उतार–चढ़ाव वाले ही प्रतीत होते हैं।

17.5 प्रश्नावली

1. भारत की पडोसियों के प्रति विदेश नीति के स्वरूप का आंकलन कीजिए।
2. भारत–चीन संबंधों का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
3. भारत–पाकिस्तान के बीच विवाद के मुख्य बिन्दुओं का वर्णन कीजिए।
4. भारत–भूटान संबंधों की व्याख्या कीजिए।
5. भारत व नेपाल के बीच सहयोग व टकराव के बिन्दुओं का वर्णन कीजिए।
6. भारत–श्रीलंका के ऊभरते संबंधों पर टिप्पणी कीजिए।
7. भारत–बांग्लादेश के मध्य वर्तमान में हुई साकारात्मक पहल का वर्णन कीजिए।
8. मोदी की पडोस नीति का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
9. भारत के अपने पडोसियों से मधुर संबंध विकसित न होने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।

17.6 पाठन सामग्री,

1. आर.एस. यादव, सम्पूर्ण इण्डियाज फॉरेन पॉलिसी इन दॉ 2000 ए.डी (नई दिल्ली, 1993)
2. आर.एस. यादव एवं सुरेश ढ़ांडा, सम्पा०, इण्डियाज फॉरेन पालिसी : कंटम्प्रेरी ट्रेंडज, (नई दिल्ली, 2009)
3. आर.एस. यादव, भारत की विदेश नीति (दिल्ली, पियरसन, 2013)
4. आर.एस. यादव, इण्डियन फॉरेन पालिसी (दिल्ली, पियरसन, 2020)
5. डेविड एम.मलोने एवं अन्य, सम्पा०, दॉ ऑक्सफोर्ड हेंड बुक ऑफ इण्डियन फॉरेन पालिसी (नई दिल्ली, 2015)
6. राजीव सिकरी, चैलेंजीज एण्ड स्ट्रेटेजी : रिचिंकिंग इण्डियाज फॉरेन पालिसी (नई दिल्ली, सेज, 2013)
7. हर्ष वी.पंत, इण्डियन फॉरेन पालिसी : एन ओवरव्यू, (मानयेस्टरयूनि प्रैस, 2016)
8. सुमित गागुली, इण्डियन फॉरेन पालिसी, (ओक्सफोर्ड यूनि०, प्रैस, 2015)
9. हर्ष वी.पंत, सम्पा०, न्यू डारेकसन इन इण्डियाज फॉरेन पालिसी : न्यौरी एण्ड प्रैक्सिस (केम्ब्रीज यूनि० प्रैस, 2018)
10. कान्ति बाजपेयी एण्ड हर्ष वी.पंत, सम्पा०, इण्डियान फॉरेन पालिसी : ए रीडर, (आम्सफोर्ड यूनि० प्रैस, 2013)
11. सुमित गांगुली, सम्पा०, ऐगोजिज दॉ वर्ल्ड, इण्डियन फॉरेन पालिसी सिंसा 1947, (आक्सफोर्ड यूनि० प्रैस, 2016)
12. डेविड एम. मलोने, जज दॉ ऐलिफेंट डांसर कम्टम्प्रेरी इण्डियन फॉरेन पालिसी (ओक्सफोर्ड यूनि० प्रैस, 2014)